UNIVERSAL
LIBRARY
OU_178733
UNIVERSAL
LIBRARY

Osmania University Library

Call No. H831 [illegible]

Accession No. [illegible] 795

Author [illegible]

Title [illegible]

This book should be returned on or before the date last marked below.

फूलों की माला

(मौलिक-कहानियाँ)

कमल जोशी

न व यु ग प्र का श न
दिल्ली

१९५५

मूल्य :—सवा दो रुपये

नवयुग प्रकाशन,
२८१, चावड़ी बाजार,
दिल्ली द्वारा प्रकाशित
तथा
रामाकृष्णा प्रेस,
कटरा नील, चाँदनी चौक
दिल्ली में मुद्रित

समीक्षार्थ

अनुक्रमणिका

१. प्रतिक्रिया	५
२. भीड़	२१
३. रायबहादुर	२८
४. गूंगा यौवन	३५
५. तपेदिक	४४
६. इज्जत की खातिर	६१
७. पैटमैन की बीवी	७१
८. फूलों की माला	८०
९. किसका बेटा	९१
१०. चाय की दुकान में	१०५
११. अंधेरी गली	१११
१२. पहला पाप	१२०
१३. स्वप्न और यथार्थ	१२६

प्रतिक्रिया

किसी भी तरफ से कोई आपत्ति न थी।

शुरू-शुरू में बलराज की माँ ने थोड़ा बहुत एतराज किया था, क्योंकि लड़की बी० ए० पास है। लेकिन सरोज के पिता को बलराज के सम्बन्ध में कोई शिकायत नहीं थी।

लेकिन तब भी शादी नहीं हुई।

ऐन मौके पर खुद बलराज ही पीछे हट गया। शादी नहीं करेगा।

हाँ, इतने साफ-साफ शब्दों में उसने नहीं कहा था और न इतने सीधे-सादे ढंग से ही। बहुत घुमा फिराकर और भूमिका बाँध कर कहा था। लेकिन मतलब यही था। इसके अलावा, क्या शब्द ही सब कुछ होते हैं, व्यंजना की ध्वनि से क्या कम अनर्थ होता है!

कहा, शादी तो फाल्गुन में होगी। उसके लिए इतने दिनों तक यहां रुका रहना सम्भव नहीं है। कारण, नयी नौकरी ज्वाइन करने की तारीख फाल्गुन से पहले है। और नौकरी भी तो यहाँ नहीं है, बर्मा में है। बलराज ने रंगून का नाम लिया। फिर नयी नौकरी से छुट्टी मिलना भी एक प्रकार से मुश्किल है। प्रायः असंभव है। शादी का मौका होने पर भी।

कुछ देर ठहर कर, हंसराज जी के चेहरे के भावों को गौर से देख कर, आवाज में सकोच लाते हुए कहा—'इससे अच्छा क्या यह नहीं होगा कि सरोज को रंगून ले जाकर वहां शादी की जाय?'

प्रायः सात पुश्त से रईस यह खन्ना परिवार है। मामूली नहीं है। हालांकि हंसराज जी के पल्ले सिर्फ आभिजात्य के अलावा और कुछ नहीं पड़ा है। उन्हें नौकरी पर गुजर बसर करनी पड़ी है। परिवार के दूसरे व्यक्तियों का पालन पोषण करना पड़ा है। चाहे अच्छी नौकरी

ही क्यों न हो। फिर भी, खून का रंग पूरी तरह अभी नहीं बदला है। संपूर्णतः लाल नहीं हुआ है।

शायद इसीलिए यह बात सुनकर हंसराज जी क्रोध और अपमान से काँप उठे। लड़की की वजह से आज उन्हें ऐसी बात भी सुननी पड़ी। उनके बाईस वर्ष के लम्बे नौकरी के जीवन में ऐसी अपमानजनक बात मुँह पर कहने का साहस किसी ने भी नहीं किया है।

आज वे रिटायर्ड हो गये हैं, लेकिन ऐसे दिन भी बीते हैं जब उनके प्रताप से शेर और बकरी ने एक ही घाट पर पानी पिया है। और आज एक छब्बीस वर्ष के युवक ने ऐसी बात कह दी! पीठ पीछे भी नहीं, एकदम उनके मुँह पर ही! आँख से आँख मिलाकर।

कहता है कि लड़की को रंगून लाकर शादी कर दो! उनके होठों पर बहुत कड़ा जवाब आया था। होठों और हाथों में। लेकिन बीस वर्षिया मातृहीन लड़की का ध्यान आते ही बात पी गये। सँभल गये। सरोज जैसी सुशील लड़की के लिये विवाह प्रार्थी युवकों की कमी नहीं होगी।

बहुत ही शान्त स्वर में जवाब दिया—'यह नहीं हो सकता, बलराज।' इतनी शान्त आवाज कि प्रायः सुनाई ही नहीं दी। बलराज विस्मित हुआ। विस्मित भी हुआ और घबड़ा भी गया। फिर जैसे उसे बहुत दुःख पहुचा हो, इस ढग से बोला—'ऐसा नहीं हो सकता?' कुछ देर बाद नमस्कार कर कहा—'तो फिर मैं आज ही बर्मा चला जाऊँगा।' कहकर फौरन उठ बैठा। उसके लिये वैसे गंभीर वातावरण में बैठा रहना असम्भव था।

सब कुछ सुनकर सरोज गुमसुम होकर बैठ गई। इतने दिनों की पुरानी घनिष्ठता के बाद बलराज का यह निष्ठुर व्यवहार! उसने तो इसकी कभी कल्पना भी न की थी। उसे अपने ऊपर धिक्कार हुआ।

उसने बलराज का इतना विश्वास क्यों किया। बिना अच्छी तरह समझे बूझे ही उसने बलराज के हाथों अपने जीवन के प्रथम वसंत की कली को क्यों खिलने दिया।

एक दिन शाम को युनिवर्सिटी के बाहर सुनसान सड़क पर उसके साथ चलते हुए बलराज ने कहा था, 'सरोज, तुम क्या कुछ भी नहीं समझती ?' उस दिन मुँह नीचा कर मौन सम्मति देने के बदले बलराज के दाढी-मूँछ सफाचट गोरे गाल पर एक चाँटा मारते हुए वह क्यों न कह सकी, 'खबरदार, जरा होश में बातें करो। समझे ?'

क्यों ? कारण, बलराज ने यह कहने का अधिकार धीरे-धीरे जमा लिया था।

आज शर्म और घृणा से वह सिकुड़ गई। मन और प्राणों में अपमान तथा पश्चाताप का विष भर गया। प्रथम अभिज्ञता की निष्ठुरता से वह बहुत देर तक अप्रस्तुत हो बैठी रही।

आत्मविश्वास के अहंकार में चोट पहुँचने की वजह से वह अपने पिता को तीन दिन तक मुँह नहीं दिखा सकी। हाँ, अपने कमरे का दरवाजा बन्द कर वह नहीं बैठी रही।

चौथे दिन पिता को अखबार पढकर सुनाते समय एक अद्भुत लाड़ के स्वर में बोल उठी—'मैं अब नौकरी करूँगी।'

पिता को बिना बताये ही उसने पहिले से अर्जी भेज दी थी। सात दिन बाद एपाईंटमेण्ट लेटर मिला। खुशी से नाचती हुई वह अपनी दादी के पास उनके पैर छूने गई। लेकिन उन्होंने उसके सिर पर हाथ फेर कर आशीर्वाद नहीं दिया। अपना सिर ठोंका, 'हे भगवान, अब मुझे उठा क्यों नहीं लेते ! आखिरी वक्त यह भी देखना पड़ा—लड़की नौकरी करेगी। मैंने पूर्व जन्म में ऐसे कौन से पाप किये थे !' अब सरोज वहाँ खड़ी न रह सकी, चल दी।

तीन दिन बीतते न बीतते ही एक शनिवार को आफिस की छुट्टी के बाद सीढ़ी से नीचे उतरते वक्त चमन ने, सरोज से बातचीत करने की कोशिश की। चमन दुबला-पतला, लम्बी नाक, घुँघराले बाल और आँखों पर चश्मा लगाने वाला युवक। उसकी कुर्सी सरोज के ठीक बायी ओर है। चमन का आफिस में नाम है। आफिस के काम की वजह से नहीं, बल्कि अपनी पार्टी के कारण। उसकी कोशिशों से ही इस आफिस में एक यूनियन बन गई है। उसी चमन ने एक शनिवार को सीढ़ी से उतरते-उतरते कहा—'आप से परिचय नहीं हुआ, हालांकि मेरी और आपकी सीट में सिर्फ दो हाथ का ही फासला है'।

पहले सरोज नहीं समझ सकी कि उससे ही यह कहा जा रहा है। लेकिन समझते देर नहीं लगी। बोली—'आफिस में फाइलों के ढेर के सामने क्या इधर उधर देखने का अवसर भी मिलता है। परिचय होना तो दूर रहा।'

'हाँ, आप ठीक कहती हैं।' चमन ने मान लिया।

बस, यहीं तक। इसके बाद कई दिनों तक चमन को मुँह उठाकर इधर-उधर देखने का वक्त ही नहीं मिला।

उस दिन सरोज को आफिस आने में दस मिनट की देर हो गई। अटेंडेंस रजिस्टर में दस्तखत कर अपनी जगह बैठने भी नहीं पाई थी कि बैरा आकर खड़ा हो गया, 'बड़े साहब ने स्वयं भेजा है। एक चिट्ठी है। अभी जवाब देना है।'

बार-बार चिट्ठी पढ़कर भी उसकी समझ में नहीं आया कि, इसका ठीक जवाब क्या होगा, क्या होना चाहिये। मुसीबत में पड़ गई। अर्थात् सलाह की जरूरत है।

लाचार हो उसे सहायता के लिये उसी रेशेल के पास जाना पड़ा। जो बात-बात में बाब्ड हेयर हिलाकर कहती है—यहाँ नौकरी करना ही उसका एकमात्र इंटरेस्ट नहीं है! किन्तु।

लेकिन मातृभाषा अंग्रेजी होते हुए भी ऐंग्लो इण्डियन रेशेल

ठीक-ठीक कुछ भी न बता सकी। अपनी अयोग्यता छिपाने के लिए भौंहें सिकोड़ते हुए बोली—'बाई दी बाई मि० साहनी तो हैं, उनके पास ही जाइये न!—'

सरोज को चमन की याद थी। और याद थी इसी वजह से उससे न पूछ कर इस अहंकारी रेशेल के पास आई थी। उस दिन जबरदस्ती सिर पड़कर चमन का परिचय करना उसे अच्छा नहीं लगा था। इसके अलावा बलराज के व्यवहार से उसने यह अच्छी तरह समझ लिया है कि जरा सी शय देते ही ये पुरुष सिर पर चढ़ बैठते हैं। लेकिन जाते वक्त अपने कंधों पर बिठा कर नहीं ले जाते। उल्टे कलंक का टीका लगाकर छोड़ जाते हैं।

लेकिन रेशेल के व्यंग के बाद, बोली मार कर कहने के पश्चात् अब चमन की उपस्थिति के सम्बन्ध में अनजान नहीं बना रहा जा सकता। उससे बिना पूछे काम नहीं चलेगा। पर इससे चमन के संबंध में उसकी बेमतलबी की सावधानी का पता चल जायेगा और वह भी इस वाचाल युवती को। उसे अगर जरा भी कुछ मालूम हो गया तो फिर सारे आफिस में बात फैलते देर न लगेगी!

चमन ने बहुत आसानी से उस अंग्रेजी चिट्ठी का मतलब समझा दिया और साथ-साथ यह भी बता दिया कि क्या जवाब होना चाहिये।

धन्यवाद देकर सरोज आ रही थी कि चमन ने कहा—'एक बात और है।' सरोज चौंकी, लेकिन ठहर गयी। बोली—'जो कुछ कहना हो, टिफिन के वक्त कहियेगा।'

अपनी बात कह कर चमन खुद ही कुछ अप्रस्तुत हो गया। उसे खुद यह खटका। आफिस के एक कमरे में पुरुष और दो-तीन स्त्रियों के बीच खड़े होकर किसी भी युवती के लिये किसी युवक की बातें सुनना सम्भव नहीं है। चाहे अच्छी ही बात क्यों न हो। इस तरह का प्रस्ताव करना ही असंयत है। अन्याय! लज्जा से, पश्चात्ताप से उसका मन भर गया।

लेकिन सरोज ने इतना ध्यान नहीं दिया। टिफिन के वक्त चमन ही उसके पास आया, 'वाकई बिना कुछ सोचे-विचारे ही उस वक्त कह दिया था। बुरा न मानें—।'

'इस तकल्लुफ को छोड़िये।' सरोज को हँसी आ रही थी। 'क्या कहना चाहते थे, कहिये ?—'

'हाँ, यह कह रहा था,' चमन उत्साहित हुआ, 'शायद आपको पता होगा कि हम लोगों की एक यूनियन है।' संक्षेप में उसने यूनियन का इतिहास बताया और इसकी जरूरत समझाई। अन्त में कहा—'इसमें हमें आपका सहयोग तो मिलेगा ही ?'

सरोज चाहती तो बहस कर सकती थी। चाहती तो अपने तर्कों से चमन का मुँह बन्द कर देती और इस यूनियन की धज्जियाँ उड़ा देती। लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। बल्कि बहुत सीधे-साधे ढङ्ग से कहा—'जरूर, जरूर। जब यहाँ आप लोगों के साथ काम करती हूँ तो फिर भला कर्मचारियों की यूनियन मे मेरा नाम न रहे, ऐसा कभी हो सकता है।'

फिर अपना बेग खोलकर बोली—'कितना देना होगा ?'

चमन को जैसे कुछ धक्का पहुँचा, 'हाँ, चन्दा तो जरूर ही कुछ देना पड़ेगा। लेकिन इतनी जल्दी क्या है, बाद में दे दीजियेगा। हमारा काम सिर्फ चन्दा वसूल करना ही नहीं है, बल्कि, सबके अधिकारों की रक्षा करना है।'

और वाकई यूनियन ने फायदा पहुँचाया। कुछ दिनों बाद दिवाली-बोनस मिला। हरेक को कुछ न कुछ मिला। यहाँ तक कि सिर्फ दो महीने काम करने के बावजूद सरोज को भी तीस रुपये मिले। रुपये कुछ ज्यादा नहीं थे, लेकिन इससे चमन के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में सब लोग और एक बार सचेत हो गये। सरोज भी। शुरू-शुरू में ही उसके बारे मे गलत धारणा बना लेने का उसे दुख हुआ।

बोनस मिलने वाले दिन ही आफिस की छुट्टी के बाद बस के इन्त-

जार में सरोज खड़ी थी। पीछे से चमन आ गया और बोला—'आप शायद यहीं से बस पकड़ती हैं ?'

न जाने क्यों सरोज का मन खुश था। उससे मजाक किये बिना न रहा गया, 'बस से जाने के लिये तो यहाँ से ही चढ़ना होता है। आप शायद टैक्सी में जाते हैं ?' यह कह कर उसने तिरछी नजरों से चमन की ओर देखा।

लेकिन चमन ने मजाक ही में जवाब देना तो दूर रहा, इस पर कुछ गौर ही नही किया, 'आपको तो मालूम है कि इधर पिछले कुछ दिनों से कैसी जबरदस्त मेहनत करनी पड़ी है !'

सरोज की जानने की इच्छा हुई। लेकिन इन्सान क्या सब कुछ जानता है, बिना इच्छा के ही जान सकता है ?

काश्मीरी गेट की एक बस आयी। सरोज ने उस पर चढने के लिये जैसे ही पैर बढ़ाया कि चमन ने मानो कुछ सिर पड़कर पूछा—'कुछ ख्याल न करें, कहाँ जायेंगी ?'

इस बार शायद सरोज को कुछ बुरा लगा। लेकिन उसने सहज भाव से ही उत्तर दिया—'अडरहिल रोड के पास ही।'

बिना कुछ सोचे-विचारे ही चमन ने कहा—'तो फिर तेरह नम्बर की बस से चलिये न। साथ-साथ चलेंगे ?'

सरोज ने कोई जवाब नही दिया। लेकिन कदम भी आगे नहीं बढाया। फिर जब तेरह नम्बर की बस आयी तो देखा गया कि भीड़ मे अपने लिये जगह करती हुई वही सबसे पहले चढी।

लेडीज सीट पर दो व्यक्ति बैठे हुए थे। एक अधेड़ और एक युवक। दोनों ही चिढ़ कर उठे। और सरोज निःसंकोच भाव से उनकी गरम जगह पर बैठ गयी। चमन सीट की पीठ पकडे खड़ा रहा। कुछ क्षण बाद कुछ सोचकर सरोज ने पीछे की तरफ मुँह घुमाया। कहा—'अरे वाह, आप खड़े क्यो हैं ? बैठिये।' सरोज ने अपने स्वर को जैसे जान-बूझ कर ही कोमल बनाया। चमन ने एक बार सरोज के बगल की

खाली जगह को देखा, फिर कहा—'नहीं, ठीक है।'

और मन ही मन वह इस दुर्लभ आंतरिकता का उपभोग करने लगा। चेहरा देखकर क्या मन की बातें समझी जा सकती हैं? मुँह की बातों से सब कुछ समझा जा सकता है?

काश्मीरी गेट से आगे बस निकल गई। चमन को ऐसा लगा जैसे अब तक बस ठहरी हुई थी।

इसके बाद वे कई बार एक साथ ही एक ही बस में आये है। पास-पास बैठकर लौटे हैं, और कभी-कभी खड़े ही खड़े गप्पें लड़ाते हुए। लेकिन आज यह पहली बार वह चाय पीने आयी है।

छोटी-सी चाय की दुकान है। कुछ हिलने वाली मेज और उनके चारों ओर काठ की कुर्सियाँ। एक तरफ काठ का पार्टीशन लगा कर छोटी-छोटी दो केबिन बना दी गयीं हैं। ऊपर लिखा है, 'फॉर लेडीज ओनली।' यह देखकर ही सरोज को साथ लिये चमन यहाँ चला आया है।

यहाँ का यह हाल देखकर सरोज ने नाक सिकोड़ी। पर लिहाज की वजह से कुछ कह न सकी।

चमन ने इस ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया। मैले पर्दे को हटाते हुए वह सरोज को भीतर ले गया और सामने ही बैठ गया।

फिर चाय की एक चुस्की लेता हुआ बोला—'और क्या मँगाया जाय, बताओ? आलूचाप?'

सरोज ने कहा—'कुछ नहीं, यानी मेरे लिए कुछ नहीं।'

'तुम्हारे या मेरे लिए का सवाल नहीं है। असली बात तो यह है कि सिर्फ सूखी चाय ही पिओगी तो दुकानदार हम लोगों को ज्यादा देर क्यों बैठने देगा?'

बहुत सी बातें हुईं। अनेक आलोचनाएँ—साहित्य, राजनीति, सिनेमा।

बात चीत के दौरान में ही चमन ने कहा—'आजकल भले घर की

लड़कियाँ फिल्मों में काम करने क्यों आती हैं, मेरी समझ में नहीं आता। इसमें उन्हें क्या रस मिलता है, वे ही जानें।' उसकी आवाज में घृणा और व्यंग था।

सरोज कहने जा रही थी, 'मेरे ख्याल में—।'

चमन ने बात काटी, 'मेरे ख्याल में ! अब तो हम दोनों का सम्मिलित ख्याल होगा। हम दोनों की बात है।'

इस बात से न जाने क्या हो गया। शायद सरोज के खून में लहरें उठने लगीं। अपनी शर्मीली आँखों से उसने चमन को देखा। इस वक्त चमन के चेहरे का भाव सरोज को अच्छा लगा। उसने दृढ़ स्वर में कहा—'हमारी सम्मिलित राय होने से पहले यह बहुत जरूरी है कि पहिले की सब बातें तुम सुन लो।'

'सुनना जरूरी है ?' गम्भीर आवाज से चमन चौंक उठा।

एक-एक कर सरोज ने सब बातें बतायीं। बलराज से परिचय होने से प्रारम्भ कर अन्त तक। उसने जरा भी कुछ लुकाया-छिपाया नहीं। सब कुछ बताकर जैसे सरोज का बोझ हल्का हुआ, शान्ति मिली।

यह सब सुनकर चमन जरा भी विचलित नहीं हुआ। उसके अंदर ज्वाला नहीं उठी। बल्कि जैसे उसे भी सन्तोष हो गया, 'ओः ये बात है ! लेकिन तुम बीस वर्ष की युवती होकर ही जन्मी हो, मैं ऐसी गलती क्यों करूँ ? तुम्हारे इन बीस अतीत वसन्तों को जैसे अस्वीकार नहीं कर सकता, वैसे ही उसके एक इतिहास को भी मान लेना पड़ेगा। लेकिन यह तो बताओ कि अतीत की बातों से हमारा लेना-देना क्या ? वर्तमान से हमारा प्रयोजन है। प्रयोजन है भविष्य से।'

चमन ने शायद कुछ बातें बनाकर कहीं। बढ़ाकर कहीं। बनी हुई बातें हुई तो क्या हुआ ? मीठी बातें अगर बनाकर कही जाती हैं तो क्या उनकी मिठास कम हो जाती है, सुनने में क्या जरा भी खराब लगती हैं ? इसके अलावा क्या मनुष्य हर वक्त ही बँधे हुए नियमानुसार बातें करता है। हर बात को नाप-तौल कर कहता है, या कह

सकता है ! बातें बनाकर कहने में भी वक्त लगता है। बढ़ा-चढ़ा कर कहने पर भी। अगर चेहरा सुन्दर नहीं है तो चेहरे की बातों में सुन्दरता लाने में क्या दोष है ? दोष क्या है रूपक बाँधने में !

चाय के पैसे चुका रेस्तोरां से बाहर निकल कर चमन ने कहा—'चलो, तुम्हारे घर चलें। तुम्हारे पिताजी से मुलाकात करें।'

सरोज को जिस बात का डर था, वही होना चाहती है। मुलाकात करने का मतलब वह समझ गयी है। पर मतलब से डर नहीं है। डर है पिता का। बलराज के व्यवहार से उन्हें सरोज से भी ज्यादा चोट पहुंची है। वे ज्यादा अपमानित हुए हैं। चमन को देखते ही उस पुरानी चोट की ज्वाला धधक उठने की ही ज्यादा सम्भावना है। वे शायद चमन का अस्तित्व ही स्वीकार नहीं करना चाहेंगे। बातचीत करना तो दूर रहा। यह तो बहुत बुरा होगा। सरोज लज्जा से गड़ जायेगी।

लेकिन इस आशंका का जरा-सा भी आभास उसने अपने चेहरे पर नहीं आने दिया। बहुत स्वाभाविक ढग से ही कहा—'मुलाकात क्या करेंगे ? पिताजी कुछ सुन थोड़े ही सकते हैं, बहरे हैं।' यह उसने झूठा बहाना बनाया। इसके अलावा वह और क्या कहती ?

'तो फिर क्या किया जाय, बताओ ?'

'किस बात का क्या किया जाय !' सरोज ने जैसे नासमझ बनने की कोशिश की।

पृथ्वी किस तेजी से घूम रही है, आज चमन ने इस बात का हृदय से अनुभव किया। किसी तरह वह जैसे सँभल गया, 'तुम्हारे पिताजी से तो मुझे बहुत कुछ कहना था।'

'अगर कह नहीं सकते तो लिख कर भेज दीजियेगा।' अब और ज्यादा ना समझ बनने का बहाना सरोज नहीं कर सकी। चुपचाप न रह सकी, 'पिताजी को बिना बताये, पिताजी की सम्मति के बिना मैं कुछ नहीं कर सकती। मैं ही पिताजी की एकमात्र सन्तान हूँ। उनके

दिल को चोट नहीं पहुँच सकती।'

अतिमात्रा में प्रगतिवादी होते हुए भी हृदय के इस उच्छ्वास को चमन अस्वीकार नहीं कर सका। 'ये सब पुराने सेंटीमेंट है, कह कर हँसते हुए भी वह इस बात को उड़ा नहीं सका। बल्कि कुछ जोर देकर उसने सरोज के इस कथन की जैसे पुनरावृति की, 'निश्चय, तुम्हारे पिताजी की सम्मति न मिलने पर मै भी क्या कर सकता हूँ ?'

कई दिन बाद।

उस रोज अपने कमरे में ड्रेसिंग टेबल के सामने बैठी हुई सरोज शृंगार का उपसंहार कर रही थी। आफिस जाने का वक्त हो चुका था। जल्दी-जल्दी पाउडर पफ से मुँह पोंछ रही थी। इतने में हंसराज जी कमरे में घुसे, 'तुम्हारे आफिस में चमन नामक कोई युवक काम करता है ? जानती हो ?' पिता के मुँह सेएकाएक चमन का नाम सुनकर सरोज चौंक उठी। लेकिन उनके हाथ में फटा हुआ लिफाफा देखकर एक क्षण में ही सब समझ गई। चमन ने सब कुछ लिख दिया है।

उसने सिर हिलाकर बताया—'हां जानती हूँ।'

'चिट्ठी, जब मुझे मिली,' हंसते-हंसते हँसराज जी ने कहना शुरू किया, पहले तो मुझे बहुत गुस्सा आया। लेकिन सारी चिट्ठी पढ़ने के बाद अच्छा लगा। बहुत अच्छे ढंग से लिखी है। लिखा है, चिट्ठी भेजने के बजाय उसका खुद आना ही उचित था। लेकिन कुछ ऐसे कारण थे जिनकी वजह से आना नहीं हुआ। इसके लिए उसने क्षमा मांगी है, पर वह क्यों न आ सका ?' जैसे स्वगत् ही बोल रहे हों, इस तरह से उन्होंने अन्तिम बात कही।

फिर कुछ हँसकर बोले—'शायद बहुत शर्मीला है ! एक दिन उसे ले आना। कहना, चिट्ठी से सब बातें साफ नहीं हुई।'

सरोज ने मन ही मन कहा, 'कह दूँगी।'

'और कहना—कहना कि तुम लोगों की शादी में मुझे जरा भी ऐतराज नहीं है। तुम्हारा यह रोज-रोज दस से पाँच बजे तक आफिस आना-जाना मुझे पसन्द नहीं है।'

फिर जाते-जाते बोले—'अच्छी बात है, अपनी दादी को भी बता दो, वे पूजा कर रही हैं।'

पिता के चले जाने पर सरोज को रोना आगया। वाकई, उसके नौकरी करने के बाद से ही पिताजी न जाने कैसे हो गये हैं। इतने दिनों से उसने यह गौर नही किया था। पिता के प्रति उदासीन रहने की वजह से उसका मन लज्जा और दुख से भर गया। लेकिन आंखों में उमड़े हुए आंसुओं को भी रोकना पड़ा। रूमाल से पोंछना पड़ा। आफिस जाने का वक्त हो गया है।

सड़क पर पहुंच कर हंसी। अगर पिताजी को यह मालूम हो जाता कि ये कान से सुन नहीं सकते, इस वजह से ही चमन नहीं आया तो सरोज की तरह वे भी हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते।

और भी बहुत-सी बातें याद आईं। टिफिन के वक्त चमन से बहुत उदासीनता से कहेगी। बनकर कहेगी, 'तुम्हें पिताजी ने बुलाया है।' चमन पहले कुछ विस्मित होगा। हंसते हुए पूछेगा, 'क्या ?'

चमन का ख्याल आते ही बस में बैठी हुई सरोज लाल हो गई।

सरोज कहेगी, 'तुम्हारी चिट्ठी से कुछ भी साफ-साफ उनकी समझ में नहीं आया !'

यह सुनकर चमन जरूर चकित होगा, 'लेकिन इससे ज्यादा मैं और क्या साफ-साफ कह सकूँगा ? और कहने पर भी तो उन्हें कुछ सुनाई नहीं पड़ेगा।'

बहरे हैं, अवश्य यह बात संकोचवश वह सरोज के मुँह पर नहीं कह सकेगा।

सरोज कह सकेगी, 'कान से सुन नहीं पायेंगे तो क्या हुआ, आंखों

से देखेंगे तो सही। पिताजी की आंखों में धूल नहीं झोंक सकते, वे ठीक पकड़ लेंगे।'

अब संकोच में पड़ने की बारी चमन की है। लेकिन सरोज के चेहरे की तरह चमन के मुँह पर रंग का परिवर्तन स्पष्ट नहीं होगा।

तब तक बस कनाटसर्कस पहुंच चुकी थी।

बस से उतरते ही सरोज ने अनुभव किया कि आज आँफिस जाना नहीं होगा। न जाने उसे क्यों शर्म आने लगी। चमन के सामने बैठकर आज वह किसी भी प्रकार काम नहीं कर पायेगी। इससे अच्छा तो यह है कि आज अपनी पुरानी सहेलियों के यहां जाकर आँफिस की छुट्टी के वक्त तक गप्पे लड़ायी जायें। उसके बाद चमन से मुलाकात की जाय। आमने-सामने बैठकर चाय पी जायेगी। सरोज ने सोचा, आज किसी अच्छी दुकान में जायेंगे और पैसे वह देगी, चमन की आपत्ति के बावजूद।

पुरानी सहेलियों की याद आते ही उसके सामने बहुत सी लड़कियों के चेहरे एक साथ नाच उठे। शीला·····विमला तथा और भी अनेक।

शीला के यहाँ ही जाया जाय। शीला अब भी उसी पुराने मकान में है या नहीं, क्या मालूम !

सब्जी मंडी पर न उतर कर, गलती से वह एक स्टाप आगे उतरी बहुत दिनों से वह इधर नहीं आयी थी। सब कुछ जैसे नया-नया लग रहा था। सड़क के दोनों ओर कितनी ही नई दुकानें हो गई हैं। नये मकान भी बन गये हैं और बन रहे हैं। नया रंग है। लेकिन मकान पहिचानने में उसने गलती नहीं कीं।

दरवाजा बन्द था। कुंडा खटखटाते ही शीला के भाई ने आकर दरवाजा खोला। सरोज को वे पहचानते थे। लेकिन आज उन्हें एका-एक देखकर एक क्षण के लिये वह पहचान नहीं सकी। अब वे पहले बहुत ज्यादा तगड़े हो गये हैं, सुन्दर भी लगने लगे हैं।

सरोज ने पूछा—'शीला अन्दर है ?—'

नरेन्द्र ने उसे पहचान लिया, 'ओ हो, सरोज देवी ?' कह कर वह हँस पड़ा। 'आप मुझे नहीं पहचान सकीं ? आश्चर्य !' फिर हँसते-हँसते ही बोला—'अरे यह क्यों नहीं कहतीं कि अब मैं पहले से बहुत मोटा हो गया हूं ! भीतर आओ, शीला ऊपर है !'

सरोज जरा चकराई, 'आज आप का ऑफिस नहीं है ?'

इस बीच शीला अपने भाई के पीछे आकर खड़ी हो गई थी—'आजकल भैया बिजनेस करते हैं ! चड्ढा प्रिंटिंग एण्ड पबलिशिंग कम्पनी !' सरोज का हाथ पकड़े-पकड़े हंसते हुए शीला कमरे में दाखिल हुई। इतनी देर बाद सरोज ने शीला की मांग का सिन्दूर और हाथ का चूड़ा देखा। विस्मित हो उसने पूछा—'अरे यह कब हुआ ? हमें निमंत्रण न दिया तो न सही, लेकिन खबर तो देनी चाहिये थी ?'

शीला जरा लज्जित हुई, 'एकदम अचानक हुई। इतना भी वक्त नहीं मिला कि तुम सब लोगों को खबर देती। तुम्हें सब सुनाती हूँ। जरा बैठ, मैं अभी आई।' शीला कमरे के बाहर गई।

एक हाथ में एक तश्तरी जिसमें कुछ मिठाइयां और दूसरे हाथ में पानी का ग्लास लिए शीला ने कमरे में प्रवेश किया। हाथ की प्लेट सरोज के आगे रखते हुए बोली—'लो, यह जरा सा मुँह मीठा कर लो।'

मिठाइयों को देखकर सरोज ने कहा, 'पिछली कमी पूरी कर रही हो ?'

दोनों ही हँस पड़ीं।

हंसी को रोककर शीला ने एकाएक पूछा—'अच्छा, बलराज के साथ तुम्हारी क्या बातचीत हुई थी ? शादी क्यों नहीं हुई।'

सरोज के मुँह पर क्षण भर में ही जैसे किसी ने स्याही पोत दी। फिर भी जबरदस्ती हँसने की कोशिश करते हुए बोली—'तुम्हें और कोई दूसरी बातचीत करनी हो तो करो।'

लेकिन शीला ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। किसी दूसरे के सम्बन्ध में बातचीत नहीं की मैंने सुना है कि इस शादी में तुम्हें ही कुछ एतराज था। तुम्हें क्या बलराज के चरित्र पर सन्देह था ?'

बर्फी का टुकड़ा जैसे उसके गले में अटक गया हो। उसे हलक से नीचे उतारने के लिए पानी का एक घूँट पीकर बोली—'ये सब बातें तुमने किससे सुनी ?'

शीला ने चकित होकर होकर कहा—'किससे ? ये बातें बलराज ने खुद कही हैं। वे तो हमारे यहां अक्सर आते हैं; बहुत उत्साह पूर्वक शीला कहती गई, हम लोगों से उनका कुछ रिश्ता भी हो गया है न, मेरी एक ममेरी ननद से ही उसकी शादी हुई है,' फिर जरा नाक-भौं सिकोड़ कर बोली—'पर लड़की का बाप थोड़ा बहुत तो दहेज देता ही है। माना कि उनकी तनख्वाह सिर्फ दो सौ रुपये महीना है लेकिन सिर्फ धन दहेज के लालच में उस काली कलूटी भैंस जैसी' लड़की से—तू अगर उसे देखे तो छी छी !'

सरोज से अब और न बैठा गया। गिलास के पानी से हाथ धोते-धोते उसने स्पष्टतः जान लिया कि उसके चेहरे का रंग बदल गया है। किसी तरह सिर्फ इतना ही कह पाई, चाची कहां है री।'

'माँ हनुमान मन्दिर गई हैं। लेकिन तुम्हें आते देर नहीं हुई कि उठ खड़ी हुई।'

आगे कदम बढ़ाते-बढ़ाते सरोज ने कहा—'अब फिर किसी दिन आऊँगी।'

सड़क पर आकर सरोज ने घड़ी पर नजर डाली। अभी सिर्फ बारह ही बजे हैं। अब भी मजे में आफिस जाया जा सकता है। नहीं पांच बजे तक वह कहां मारी-मारी फिरे। पांच बजे से पहले तो चमन से मिलना नहीं होगा। इतनी देर से आने के लिए अगर बड़े साहब कैफियत तलब करेंगे तो क्या सरोज उनसे डरती है ! कह देगी कि उसके पिता को ब्लड्प्रेशर की शिकायत है या नहीं ! शायद गंभीर

होकर यह भी कह सकते हैं--'तो फिर आज न आतीं !'

कहें तो कहने दो।

प्राय: पौन बजे चमन ने देखा कि सरोज आ गयी है और एक फाइल खोल कर बैठी हुई है। चमन का ख्याल था कि आज वह नहीं आयेगी। लेकिन इतनी देर से आने के कारण वह विस्मित हुआ। दो चार बार उसने तिरछी नजरों से सरोज की ओर देखा। सरोज लिखती ही जा रही थी। लाचार हो अपनी ओर ध्यान आकर्षित करने की गर्ज से उसने कुर्सी की आवाज की एक दो बार खांसा, और खिड़की से थूका। लेकिन आश्चर्य, मुँह नीचा किये सरोज जो लिखने बैठी है तो एक क्षण के लिये भी मुँह ऊपर नहीं उठाया।

पांच बजते न बजते ही फाइलें रख कर सरोज उठ खड़ी हुई। दो-तीन मिनट बाद चमन भी उठ खड़ा हुआ। तब तक सरोज ओफिस से बाहर जा चुकी थी।

चमन को इसकी चिन्ता नहीं थी जल्दी जल्दी पैर बढ़ाते हुए बस स्टाप के पास पहुँच कर उसने सरोज को पकड़ लिया, 'एक तो आज इतनी देर से तुम आफिस आई। दूसरे, मैंने इतनी कोशिशें की, लेकिन तुमने एक बार भी मेरी ओर नहीं देखा। और फिर जैसे घोड़े पर सवार हो चल दीं ? बात क्या है, जरा बताओ तो सही ?'

सरोज कुछ विचित्र ढंग से हँसी—'पिताजी ने सम्मति नहीं दी !'

भीड़

नौकरी लगे हुए दो महीने भी समाप्त नहीं हो पाये कि मधुकर ने अपनी मां को एक पत्र लिखा। लिखा था—'होटल का खाना बहुत अरूचिकर होता है और स्वास्थ्य भी नष्ट हो रहा है।'

घर वालों ने जब यह पत्र पढ़ा सब मुस्कुराये। किसी को भी ठीक बात समझते देर न लगी। कल के लड़के यही तो चाहते हैं।

अपनी पत्नी से परामर्श करने के पश्चात् गुप्तेश्वर ने पत्र का उत्तर दिया—'अपनी बहू को आकर ले जाओ, होटल का खाना खाकर स्वास्थ बिगाड़ने की कोई आवश्यकता नहीं।'

मधुकर और बानो, दोनों ने ही दबी जबान से इसका विरोध किया। पर जब किसी ने एक न सुनी तब दोनों बहुत प्रसन्न हुए। सच तो यह है कि वे दोनों ही यह चाहते थे। सबसे अलग, ऐसे स्थान में जहाँ दोनों बैठकर आपस में खूब बातें कर सकें, हँसी-मजाक और छेड़छाड़ करने की स्वतन्त्रता हो, जहाँ स्वजनों की भीड़ न हो, बड़े-बूढ़ों के अयाचित उपदेश और बच्चों का कोलाहल जहाँ कानों को कष्ट न पहुँचाये। हम कब क्या करते हैं—यह सब देखने के लिए जहाँ इतनी असंख्य कौतूहली दृष्टि न हो। इसके अतिरिक्त मधुकर का विचार था कि बानो बहुत शीघ्रता से सांसारिक होती जा रही है। किन्तु इसमें उसका क्या दोष। बाजार में रहने पर वहाँ के शोरगुल से कैसे बचा जा सकता है। जहाँ चारों ओर मिट्टी और कीचड़ है, वहाँ रहते हुए यह आशा करना व्यर्थ है कि हमें मिट्टी और कीचड़ नहीं लगेगी।

लेकिन मधुकर नहीं चाहता कि बानो इतनी जल्दी सांसारिकता में पटु हो जाय। इस छोटी अवस्था में ही वह सामाजिक हो, हिसाबी बने और एकदम चतुर गृहिणी बन जाय। इन सब बातों का अनुभव

जितने ही बिलम्ब से हो, उतना ही अच्छा है। इसके लिए तो सारा जीवन पड़ा है। जब हम दोनों के बीच घर-गृहस्थी के झंझट आयेंगे। जब हमारी विचार-धारा में संसार की सब बातें होंगी—केवल हम दोनों ही नहीं रहेंगे। परस्पर के सम्बन्ध में जब और कोई कौतूहल न होगा, उत्सुकता नहीं रहेगी, अनुभूति की तीक्ष्णता कम हो जायगी—ऐसा दिन जितना विलम्ब से आवे उतना ही अच्छा है। उस दुखमय दिन को इतनी जल्दी बुलाने की क्या आवश्यकता।

मधुकर लजीला नहीं है। वह जीवन का उपभोग करना चाहता है। एक तो उपभोग का समय ही कम है और फिर वह त्याग के नाम पर स्वेच्छाकृत आत्मपीड़न करना नहीं चाहता।

कलकत्ते में अस्सी रुपये कुछ भी नहीं है पर इस अस्सी रुपये मासिक की नौकरी पाने में मधुकर को धरती-आकाश एक करना पड़ा था। डेढ़ साल के बेकार जीवन में लगातार चेष्टा करने के बाद अन्त में उसे यह नौकरी मिली है।

बहुत खोज के बाद चितरंजन ऐवेन्यू में उसे एक कमरा किराये पर मिल गया है। दो मंजिल पर कबूतर का घोंसले जैसा यह कमरा है। लेकिन हवा और प्रकाश है। कमरे के सामने हाथ भर लंबा बरामदा है, यह रसोई बनाने के काम में आता है। इसका आधा हिस्सा मधुकर को मिला है। लेकिन यह देखकर भी बानो प्रसन्न हुई। छोटे-से शहर की लड़की होते हुए भी वह जानती थी कलकत्ते जैसे शहर में आजकल अच्छा कमरा मिलना कठिन है। विवाह से पहले वह यहाँ मामा के साथ कुछ समय तक रही थी। मामा-मामी के यहाँ रहकर कलकत्ते की मध्यवित्त श्रेणी के रहने का ढंग उसे मालूम हो चुका है।

कमरा छोटा है। क्या हुआ छोटा ही अच्छा होता है। बहुत बड़े कमरे से फायदा भी क्या। बड़े कमरों में असुविधा ही अधिक होती है। यह ठीक है। नीड़ की यह संकीर्णता ही अच्छी है। इससे प्रेम बढ़ता ही है। दोनों के बीच भेद रखने की आवश्यकता नहीं।

चलते समय यदि हाथ से हाथ टकरा जाय या शरीर छू जाय तो यह अच्छा ही है।

यहाँ भी भीड़ है। इस घर में बहुत अधिक आदमी रहते हैं। बिलकुल भरा हुआ है। होने दो, अपना क्या बिगड़ता है। यहाँ की भीड़ आत्मीय-स्वजनों की भीड़ की तरह हमें दबा तो न सकेगी। यहाँ की भीड़ से कोई लेना देना नहीं, यह तो गम्भीरता है। गुप्त बातचीत या प्रेमालाप में यहाँ कोई संकोच नहीं। जहाँ सब बातें कर रहे हैं, वहाँ दूसरे की कौन सुनता है। कलकत्ता में व्यक्ति नहीं, जनता है।

बहुत कम समय में ही बानो ने कमरे को सजा दिया। इतने दिनों बाद मानो उसने अपना स्थान खोज लिया है। यहाँ कोई मालिक नहीं कोई आज्ञा देने वाला नहीं। कौन सी चीज कहाँ और कैसे रखी जायगी, इस बारे में उसकी राय अन्तिम है। सुबह सन्ध्या क्या भोजन बनेगा, इस सम्बन्ध में और किसी आदेश या निर्देश की आवश्यकता नहीं। वह जो चाहे यहाँ कर सकती है। वह घर पूर्णतः उसका ही है। अपनी रुचि, अपने इच्छानुसार वह सब काम कर सकती है।

अब दीर्घ वियोग भी नहीं है। केवल आफ़िस में कुछ घण्टे और कभी-कभी मित्रों से मिलने-जुलने के अतिरिक्त मधुकर सदा ही यहां रहता है। बातें करता है, कहानियाँ सुनाता है। कुछ दिनों से बानो ने पढ़ना लिखना आरम्भ किया हैं। मैट्रिक की परीक्षा देगी। इससे मधुकर बहुत उत्साहित है। दोनों समय नियमित रूप से पढाता है। विवाह हुए दो साल बीत चुके है, इसका उन्हें ध्यान नहीं है। जैसे थोड़े दिनों पहले ही विवाह हुआ हो। वे सब दिन मानों नये होकर फिर लौट आये हे।

फिर भी, बीच-बीच कैसा तो लगता है। कभी-कभी मधुकर बहुत बेचैनी-सी अनुभव करता है।

उस दिन मित्रों से मिलकर लौटने में देर हो गयी। उसके आते ही बानो ने मान के स्वर में शिकायत की—'आज इतनी देर क्यों कर दी ? तुम्हीं सोचो, अकेले बैठे-बैठे मेरा मन कैसे लगे।'

इस समय मधुकर को बानो की यह विरह वेदना मूर्खता मालूम हुई।

मधुकर ने उत्तर दिया—'मन लगने की भी एक ही कही। इससे पहले साल भर में एक दो बार ही भेंट होती थी। तब समय कट जाता था, मन लगता था और अब एक दो घण्टे की देर भी असह्य होती है। किताबें और अखबार, सभी तो कमरे में हैं। बैठी बैठी पढ़ती रहती।'

बानो बोली—कितनी देर तक किताबें पढ़ी जा सकती है। मुझे पढ़ना अच्छा नहीं लगता।'

'यह तो मै भी देख रहा हूं। आजकल किताबें पढ़ने के बजाय, इस कमरे में या दूसरों में जाकर बेकार गप्पें लड़ने में तुम्हें अच्छा लगता है।'

आज सुबह जब किसी काम से मधुकर ने बानो को पुकारा तो वह कमरे में नहीं थी। बगल वाले कमरे की स्त्री से कुछ बातें कर रही थी। मा की अवस्था वाली स्त्री से बातें करने का क्या विषय हो सकता है। और उस समय ही बातें करने की ऐसी जल्दी क्या पड़ी थी।

बानो ने चिढ़कर तीव्र स्वर में उत्तर दिया—'हां, अच्छा लगता है। गप्पें लड़ाने में किसे मजा नही आता ? तुम भी तो अपने दोस्तों से गप्पें लड़ाकर अब लौट रहे हो।'

'मै गप्पें लड़ाता हूँ, इसलिए क्या तुम भी इनके साथ गप्पें करोगी ? और अब इस मकान में तुम्हारी सहेलियों की संख्या क्रमशः बढ़ रही है। मासी, बुआ, जीजी और देवर सब बनते जा रहे है। ये सब तो हमारे यहाँ भी थे। इन लोगों से इतना मेल-जोल बढ़ाना मुझे पसन्द नहीं है, मैं कितनी बार यह कह चुका हूँ।'

बानो ने और भी तीखी आवाज में कहा—'क्या करूँ, बताओ ? मेरे तो तुम्हारे जैसे शिक्षित मित्र नहीं हैं। जो पड़ोस में हैं, उन्हीं से मिलना पड़ता है। आदमियों की सूरत देखते ही मैं तो तुम्हारी तरह नाक-भौं नहीं सिकोड़ सकती। पास-पास रहने पर कुछ न कुछ कहना ही पड़ता है।'

तनिक-तनिक बात में आजकल बीच-बीच झगड़ा हो ही जाता है। फिर दो तीन दिनों तक दोनों का मुँह फूला रहता है। मौखिक शिष्टता की कमी नहीं होती। मन में क्रोध जितना अधिक होता है बाहर सौजन्य उतना ही बढ़ता है। कभी-कभी मधुकर को यह मिथ्या शिष्टाचार बुरा लगता है। वह सोचता है, चाचा और चाची में जोर का झगड़ा होता है और फिर मार पीट और गाली गुप्तार होती है, अगर वैसा ही होता तो कोई हानि न होती। उसने कई बार देखा कि चाची के गालों पर से चाचा के अंगुलियों के दाग मिटने भी नहीं पाये हैं कि, उससे पहले ही किसी काम का लक्ष्य कर वे दोनों फिर एक होकर परस्पर मिल गए हैं। पर बानो दूसरी ही ढंग की है। तनिक सी बात कह देने पर उसका मुँह तुरन्त फूल जाता है और फिर उसका मन जल्दी हल्का नहीं होता। बानो का दिल सरल नहीं है। साधारण बात को भी वह असाधारण बना देती है, और फिर उसके मन को जल्दी सन्तोष भी नहीं होता।

कभी कभी मधुकर परिस्थितियों का विश्लेषण करता है। निर्विच्छिन्न साहचर्य जल्द ही क्रांतिकर हो गया है। अब इसकी असुविधायें ही अधिक दिखायी पड़ती हैं। जैसे इससे पहले ही अच्छा था। दोनों में यथेष्ठ अंतराल था, अस्पष्टता थी ! परस्पर वे इतने सुलभ न थे। इतने नग्न भाव से परस्पर को नहीं देखा था।

शरीर के किसी किसी भाग में ऐसी तहें हैं जो सुदृश्य नहीं, दृष्टव्य भी नहीं। मन का भी यही हाल है। अति निकटता के बिना इन्हें जाना भी नहीं जा सकता।

मधुकर को लगता है इससे अच्छी तो चिट्ठी की ही बानो थी। चिट्ठी से आनन्द मिलता था। विरह व्याकुलता तब यथार्थ मालूम होती थी। दुख होता था। पर उसमें अच्छा लगता था। वह दुःख नाटक के दुख की तरह उपभोग्य था। चिट्ठी की बानो रक्त-मांस की न थी। उसमें मधुकर की कल्पना का भी स्थान था। मन की इच्छानुसार नाना प्रकार से मधुकर कभी उसको बनाता था, कभी उसको तोड़ता था। उसमें नित्य नूतनत्व था। पर निकट लाकर यह क्या देख रहा हूँ। यह तो बिलकुल स्थूल मांस-पिंड है।

उस दिन शनिवार था। आफिस की छुट्टी जल्दी हो गयी थी। मधुकर और कहीं न ठहरकर सीधा घर आया। उसकी इच्छा बानो को साथ लेकर सिनेमा जाने की थी। घर पहुंचकर देखा कि बानो नहीं है। मधुकर कुछ विस्मित हुआ। यहां आने के बाद से केवल एक दिन वह अपने मामा के यहां गयी थी, और एक बार पड़ोस की स्त्री के साथ कहीं घूमने गयी थी। लेकिन दोनों बार पहले सूचित कर तथा पूछकर ही गयी थी। आज बिना कुछ कहे सुने ही कहां गयी? और बिना कहे सुने ही नहीं, उसकी बात का उल्लंघन करके गयी। चार दिन पहले ही यह ठीक हो चुका था कि हम आज सिनेमा चलेंगे। बानो सिनेमा की प्रेमी भी है। पर आज उसे ऐसा कौनसा प्रलोभन मिला जिससे सिनेमा का प्रेम भी तुच्छ हो गया। मधुकर कुछ भी अंदाज न लगा सका।

कुछ देर बाद ही मामला समझ में आ गया। पहली मंजिल में रहने वाली एक दस ग्यारह साल की लड़की ने ऊपर आकर मधुकर के हाथ में उसके कमरे की चाबी दी। बोली, चाची कह गयी है कि आपका खाना मेज पर रखा है, चाचा जी!'

'पर'—मधुकर ने पूछा—'तुम्हारी चाची कहां गयी हैं?'

'ओ, आपको पता नहीं ! सामने के कमरे की मौसी और हमारी भाभी के साथ चाची भी कालीघाट घूमने गयी हैं। रामू भैया भी साथ गये हैं, उनके स्कूल की आज छुट्टी हो गयी थी।"

कलकत्ते में देखने लायक सब चीजों को मधुकर के साथ बानो ने कई बार देखा है। काली घाट भी वह चार-पांच बार घुमा लाया है। लेकिन वह उससे बिना कहे ही चली गयी। वही करती है जो मधुकर को पसंद नहीं। इन अपढ़ और अवेडों के साथ ही वह मेल-जोल बढ़ायेगी। मेल-जोल के लिए बानो इतनी कंगाल क्यों हो गयी है। उसे ज्यादा मेल-जोल बढ़ाना ही पसंद है। अकेला मधुकर यह तृष्णा कैसे मिटायेगा।

मधुकर ने सोचा, जिस भीड़ से मैं बचना चाहता था—उसी भीड़ में आकर मैं घिर गया हूँ। शायद यह स्वाभाविक है। सिर्फ दो ही व्यक्ति जीवित नहीं रह सकते, और भी बहुत से व्यक्तियों की आवश्यकता होती है।

रायबहादुर

उस वक्त गिर्जे की घड़ी में सात बजने में सत्रह मिनट बाकी थे। अगर रास्ते में कोई दुर्घटना या 'ट्रैफिक जाम' न हो तो नियत समय पर ही ट्राम पहुँचेगी।

प्रकाश ने एक सिगरेट जलायी। कल रात को वह यह जानने के लिए आया था कि रायबहादुर के दर्शन कब होते हैं। सुबह सात से आठ तक वे मुलाकातियों से मिलते हैं।

अगर वह सबसे पहले पहुंच जाय, तो दो-चार बातें करने का मौका भी मिलेगा। यदि दर्शन-प्रार्थियों की संख्या अधिक होगी तो फिर ज्यादा कुछ कहने का वक्त या मौका नहीं मिलेगा।

सिगरेट के रिंग बनाने में उसे बड़ा मजा आ रहा था। बहुत सुहावना दिन है। कल रात भर बारिश हुई है। आज भी आकाश में मेघ छाये हैं। हवा भी कुछ ठंडी भीगी है। ऐसे अच्छे दिन सुबह से ही, चाहे कितना ही काम क्यों न हो, दूसरे आदमी के मकान पर कौन धरना देगा? हर एक अपने काम में लगा हुआ है, अपनी-अपनी सुविधानुसार।

रायबहादुर की विशाल अट्टालिका के सामने जिस समय प्रकाश टूटा छाता खोलकर खड़ा हुआ, वर्षा शुरू हो गई थी।

प्रवेश पथ के बायीं ओर ही ड्राईंग रूम है। सारे मकान में शांति है। निस्तब्धता। यह अच्छा ही है कि लोगों की भीड़ नहीं है। कुछ देर वह खड़े-खड़े सोचता रहा कि बिना आज्ञा के कमरे में घुसना ठीक होगा या नहीं। अपने पीछे किसी के पैरों की आहट सुन वह चौंकने को ही था, कि जरी की पगड़ी लगाये और अचकन पहने हुए बैरा ने बगले वाले कमरे की ओर अंगुली से इशारा किया।

प्रकाश ने पूछा, 'बाबू साहब क्या अभी नीचे आयेंगे ?'

'बाबू साहब !' ये दो शब्द कहने के बाद उसे भिखारियों की याद आ गई ।

चपरासी ने उसकी बात का कोई जवाब दिये बिना ही दरवाजे की ओर फिर इशारा किया । शायद, कदम आगे बढ़ाते हुए प्रकाश ने सोचा, जवाब देने की भी जरूरत नहीं समझता । एक बार उसने अपने कुछ मैले कपड़ों की ओर देखा और फिर कमरे में घुस गया ।

कमरे में और भी तीन व्यक्ति बैठे थे, प्रतीक्षा में ऊँची गर्दन किये हुए । यह सच है, बाहर की अस्पष्ट ध्वनि सुनकर उनमें से प्रत्येक ही चंचल हो उठा था । उनके चेहरों की तरफ एक सरसरी नजर डालकर ही प्रकाश यह ताड़ गया कि उन सबके मुँह पर विरक्ति का भाव है ।

एक कुर्सी पर वह धीरे से बैठ गया । स्प्रिंग की गद्देदार मुलायम और आरामदेह कुर्सियां हैं । बीच में संगमर्मर की एक गोल मेज है । ऐश-ट्रे से लेकर महात्मा गांधी का चित्र तक चांदी के फ्रेम में सुन्दर ढंग से सजा हुआ है । अणुवीक्षण-यंत्र से परीक्षा करने पर भी शायद धूल का एक कण न मिलेगा । दीवार पर मनीषियों के फोटो सुशोभित हैं । चमकती हुई अलमारियों में नये जापानी खिलौनों की तरह सुनहरी जिल्द की किताबें सजी हुई हैं । साढ़े छः फीट लम्बी घड़ी में सात बजकर बाइस मिनट हुए हैं ।

कमरे में चारों व्यक्ति पत्थर की मूर्ति बने बैठे हैं । आंखों की पलकों के अलावा उनमें जीवन का कोई आभास नहीं है । रेशम के सुनहरे पर्दे पर उनकी आंखें गड़ी हैं और उनमें उत्सुकता है । बारीश होते हुए भी कमरे में गर्मी है । सिर के ऊपर ही पंखा लगा हुआ है । लेकिन स्विच की ओर हाथ बढ़ाने का कोई साहस नहीं करता ।

इस बीच प्रकाश दूसरे दर्शनप्रार्थियों को एक-एक कर देखने लगा । वह खुद एक नौकरी के लिए आया है । रायबहादुर का सिर्फ एक

शब्द, सफेद कागज पर दो लाइन या फोन पर जरा कह देने से ही उसके जीवन को एक सहारा मिल जायगा।

सुना है, करोड़पति होते हुए भी उनके हृदय में गरीबों के प्रति बहुत दया है। विश्वविद्यालय ने उसे कलम घिसने लायक तो बना दिया है। फिर, थोड़े से मौखिक परिश्रम के अलावा उसका और कोई अनुरोध नहीं है। वह उत्साहित होने लगा। बी० ए० पास करने के पश्चात वह तीन वर्ष से नौकरी की तलाश में है। इतने दिनों बाद उसकी टूटी नाव किसी एक निर्दिष्ट स्थान पर पहुँची है।

उपस्थित लोगों की दृष्टि बचाकर उसने बहुत होशियारी से पैकिट से अंतिम सिगरेट निकाली। दियासलाई जलते ही तीनों व्यक्ति एक साथ चौंक पड़े। इतने में वह सिगरेट जला चुका था। उसने फौरन ही निश्चय कर लिया, पर्दे के उस ओर जूते की आवाज होते ही वह सिगरेट को जूते के नीचे दबा देगा। हाँ, बू को हवा में मिलने में जरूर कुछ देर लगेगी। लेकिन यह तो मालूम न होगा कि इन चार व्यक्तियों में से कौन धूम्रपान कर रहा था। पर्दे के उस ओर आँखें गड़ाये वह कश पर कश लगाने लगा।

इस अशिष्टता से तीनों व्यक्ति चकित हो गये। उनके मुँह पर ऐसा भाव था जैसे उन सबको बहुत पीड़ा हो रही है। वे शंकित हो उठे। यदि सिगरेट की बू से रायबहादुर असंतुष्ट हो जांय तो किसी का भी काम न होगा और फिर वे लोग भविष्य में मुँह दिखाने लायक भी न रहेंगे। लेकिन वह साधारण-सी बात प्रकाश के दिमाग में क्यों नहीं आई, यह उन लोगों की समझ में नहीं आया।

बाहर बारिश हो रही है। यह अच्छा ही है। प्रकाश ने सोचा, अब लोगों की भीड़ नहीं होगी। इधर, सिगरेट का धुआँ सारे कमरे में छा गया। रायबहादुर के आने का वक्त हो गया है। किसी भी वक्त वे आ सकते हैं।

अपेक्षाकृत अधेड़ उम्र के व्यक्ति ने, आँखों पर सोने के फ्रेम का

चश्मा, गले में रेशमी चादर, रेशमी कुर्ता, दाढ़ी-मूँछ सफाचट, भरा हुआ गोल चेहरा—कहा, 'महाशय, आप जल्दी ही सिगरेट फेंक दीजिए ! अभी वे आजायेंगे तो मुसीबत होगी ।'

'मुसीबत की कौन-सी बात है !' लापरवाही से प्रकाश ने जवाब दिया; 'कब तक चुप बैठा जा सकता है ?'

वह अधेड़ व्यक्ति कुछ चिढ़ गया, 'मेरी भी जेब में सिगरेट है, समझे ?' उन्होंने उत्तर दिया, 'यह देखिये—'

सोने का एक केस है । उस पर लिखा है, सत्येन्द्र । 'आप क्या समझते हैं कि मैं सिगरेट पीना नहीं जानता ?'

'तो फिर शुरू कीजिए न !' प्रकाश के चेहरे पर शरारत थी ।

'नहीं, यह भद्रता नहीं है । माननीय व्यक्ति के सामने धूम्रपान से बढ़कर और कोई अशिष्ट आचरण नहीं हो सकता ।'—सत्येन्द्र ने कहा ।

'पर वे यहाँ उपस्थित तो नहीं हैं ।'

'नहीं हैं तो क्या हुआ ? लेकिन किसी भी क्षण आ सकते हैं न !'

'तब छिपा दी जायगी ।' प्रकाश ने हंसते हुए जवाब दिया ।

'सिगरेट तो आप बुझा देंगे, लेकिन उसकी बू तो आप नहीं छिपा सकते,' सत्येन्द्र ने अपना सिगरेट केस जेब में रखते हुए कहा ।

आँखें नचाते हुए प्रकाश ने जवाब दिया, 'उन्हें यह कैसे मालूम होगा कि कौन पी रहा था ?'

'वाह साहब ! आपने खूब कहा । चोरी करें आप और संदेह हो दूसरों पर ! क्यों ?'

'हो सकता है, सिगरेट पीने में वे कुछ बुराई ही न समझें ।'

'आप रायबहादुर को नहीं जानते । इसलिए इस तरह बक रहे हैं । वे स्वयं किसी प्रकार का नशा नहीं करते । यहाँ तक कि पान भी छूते ।'

'यह आप नहीं कह सकते !' तीसरे व्यक्ति ने इस बार जबान खोली, 'वे यहाँ की मशहूर डिनर-पार्टी, डान्स और क्लबों में आते-जाते

रहते हैं। फिर, क्या संभव है कि वे किसी तरह का नशा न करें ?'

तीनों व्यक्तियों ने वक्ता की ओर देखा-दीर्घ, गौर वर्ण, सुन्दर चेहरा, लम्बी नाक और सफेद लिनन का सूट। 'इसके अलावा,' उन्होंने फिर कहा, 'रायबहादुर के प्राइवेट सेक्रेटरी मि० मेनन का नाम सुना है ? उनसे मेरा घनिष्ठ परिचय है : उन्होंने बताया कि रायबहादुर को ड्रिंक का बेहद शौक है।'

'क्या आपने खुद देखा है ?' सत्येन्द्र के आत्मसम्मान को धक्का पहुँचा।

'खुद देखना ही महत्वपूर्ण नहीं है !' तीसरे व्यक्ति ने उत्तर दिया, 'बड़े आदमी प्रकाश में कभी कुछ करते है ? आपने क्या कभी सुना है ?'

'ओह, तो यह कहिये।' सत्येन्द्र का चेहरा चमका, 'असली बात क्या है, जानते हैं ? पैसेवालों के प्रति हम लोगों को कुछ स्वाभाविक ईर्ष्या होती है। इसलिए बेमतलब ही उनके सम्बन्ध में हम बदनामी फैलाते हैं।'

'बिना किसी कारण बदनामी फैलाने में जिन्हें आनन्द मिलता है, उनमें से मैं नहीं हूं। जनाब, किसी वक्त मेरे पास भी लाखों रुपये थे। सोहानी वंश का नाम आपने सुना है न ? मै उसी वंश का अन्तिम उत्तराधिकारी हूँ। जब मै पेरिस में था, तब आपके इन रायबहादुर साहब ने मुझसे पंद्रह हजार फ्रैंक उधार लिए थे। पेरिस कहाँ है, जानते हैं ? फ्रांस में। वह रुपया इन्होंने किसी डचेज की लड़की को दिया था। उसकी अवैध सन्तान के भरण-पोषण का प्रबन्ध करने पर ये किसी तरह बच गए थे। लेकिन पेरिस से भागकर इन्हें वियेना जाना पडा। वहां भी राजवंश की एक कुमारी पर इन्होंने हाथ साफ किया। लेकिन इन सबके मूल में क्या हैं, आप जानते हैं ?—उनका इन्द्र जैसा सुन्दर, सलोना और सुकुमार चेहरा ! मैं दुनिया मे बहुत घूमा हूँ, लेकिन उनके जैसा सुदर्शन पुरुष मैंने कहीं नहीं देखा।'

'वे बहुत सुन्दर हैं, इसमें शक नहीं।' चौथे व्यक्ति ने इस बार

अपना मुँह खोला—'लेकिन उनका बल बाह्य सौंदर्य ही सब कुछ नहीं है। उनका हृदय उससे भी कहीं ज्यादा सुन्दर है। आंतरिक सौंदर्य के सामने बाह्य सौंदर्य कुछ भी नहीं है।' तीनों व्यक्तियों ने उस युवक की ओर देखा—यही कोई तेइस-चौबीस साल का होगा, सिर पर छोटे-छोटे महीन बाल, खद्दर की धोती और कमीज, स्वस्थ और नंगे पांव, हाथ एक लम्बी सी नोटबुक। 'रायबहादुर को निकट से जानने-पहचानने की जितनी सुविधा और सुयोग मुझे मिला है, उससे यही मालूम होता है कि आप लोग उन्हें अभी ठीक से नहीं जानते। ब्रह्मचर्य आश्रम, वेद विद्यालय, नारी उद्धार समिति, अनाथालय और गौशाला का प्रतिष्ठाता एव परिचालक कौन है—जानते हैं? वे ही जिन के सम्बन्ध में अभी इतनी बातें हुई हैं। विधवा और अनाथों के रहने के लिए जो विशाल भवन रहा है, उसकी नीव इन्होंने ही डाली थी। पता है उस भवन के लिए इन्होंने खुद कितन दान दिया है? पचास हजार! बस, इससे ज्यादा मे कुछ नहीं कहना चाहता। अब आप लोग खुद ही सोच-समझ लें।'

प्रकाश को अचम्भा हुआ। रायबहादुर के बारे में उसने अनेक बातें सुनी हैं। उनके बारे में सही-सही जानने का उसके मन मे एक अदम्य कौतूहल है। कोई कहता है, वे तैंतीस साल के है तो कोई उन्हें तैंतालीस वर्ष का बताता है। देखा जाएगा। ऊपर से उतरने का वक्त तो हो ही गया है। किसी भी क्षण पर्दे को हटाते हुए वे भीतर दाखिल हो सकते हैं। साढ़े छः फीट लम्बी घड़ी में आठ बजने में सत्रह मिनट बाकी हैं।

बाहर, बारिश बंद हो गई है। ट्राम की आवाज सुनाई पड़ती है। सोहानी वश के व्यक्ति ने पाकिट से इत्र लगा हुआ रूमाल निकाला और उससे कई बार मुँह पोंछा। सत्येन्द्र हाथ की अनामिका द्वारा माथे को खुजला रहे थे। उसमें जो अगूठी थी, उसमें एक बहुत बड़ा चमकदार हीरा था। वेद-विद्यालय का युवक अपनी लम्बी नोटबुक में पेन्सिल

से कुछ लिखने लगा। सीढ़ी पर पैरों की आवाज सुनकर प्रकाश चौंका, वेलवेट के स्लीपर की मृदु ध्वनि ! लेकिन क्षण भर बाद ही आवाज बन्द हो गयी। पर्दे पर शिथिल आलस्य ! कुछ मिनट·····

घड़ी ने प्यानो के स्वर में आठ बजाए।

पर्दा एक बार हिला। कुर्सी हटाने जैसी आवाज हुई। बैरा अन्दर आया।

'जाइये बाबू, आज मुलाकात नहीं होगी।' पर्दे को उसने एक ओर हटाते हुए कहा।

'आज बाबू साहब क्या अभी नीचे नहीं आयेंगे ?'

'नहीं।'

'फिर आज किस वक्त मुलाकात होगी ?'

'कोई ठीक नहीं।'

कुछ देर तक खामोशी रही और फिर सब दर्शनाभिलाषी एक के बाद एक बाहर निकल आए। भीगे रास्ते से एक खास तरह की बू निकल रही थी।

सड़क पार कर, एक पान वाले की दुकान के सामने जाकर प्रकाश खड़ा हो गया। सोच रहा था, डेढ़ पैसे की सिगरेट खरीदे या दो पैसे की ?

एक नीले रंग की पैकार्ड मोटर रायबहादुर के दरवाजे के सामने आकर रुकी। मोटर से ड्राइवर के उतरने के पहिले ही दरवाजा खोलने के लिए तमगा लटकाए हुए बैरा दौड़ा दौड़ा आया।

कार से एक युवती उतरी। डेढ़ और दो पैसा वह भूल गया। फुटपाथ पर एक बीड़ी वाला चूल्हा सुलगा रहा था। आग की उड़ती हुई लपटों को देखकर प्रकाश ने सोचा कि पम्पियाई की आग अभी बुझी नहीं है। युवती का आंचल भी दृष्टि से ओझल हो गया।

वियेना की राजकुमारी के सुनहरे केशों में क्या रात का इशारा मिलता था ?

गूंगा यौवन

ज़मीन से एक या डेढ़ फीट की ऊँचाई पर पहली मंजिल है।

कमरे क्या हैं बीसवीं सदी की गुफायें हैं, अन्धकारमय। कमरों के भीतर जैसे हमेशा ही रात रहती है। हवा में सील की बू है। गली की तरफ सिर्फ एक खिड़की है। दूसरी ओर छोटे-छोटे मकानों के ऊपर आकाश है। इस खिड़की से आकाश के जरा-से हिस्से की झलक मिलती है। और तब ही यह मालूम होता है जैसे बाहर दुनिया भी है।

डबडबायी आँखों से कुन्ती उसी आकाश की ओर देख रही थी। अभी-अभी माँ ने डाँटा है—'धीगड़ी हो गयी, लेकिन जरा भी सहूर नहीं। इधर सब्जी जलकर खाक हो गयी और तू बैठी हुई देखती रही। चल हट, मेरी आँखों के सामने से दूर हो।'

कुन्ती वहाँ से हट गयी। लेकिन बहुत दूर नहीं, उसी खिड़की के पास आ गयी। आकाश की जो थोडी-बहुत झलक मिलती है, उसी को देखती हुई बहुत देर तक बैठी रही। हृदय में आवेग उठ रहे थे। शब्दों के द्वारा वे बाहर नहीं निकल सके। इसी कारण आँखें डबडबा आयीं। कुन्ती सारी सुध-बुध खोकर वैसे ही बैठी रही।

अचानक उसे कुछ ख्याल आया। सामने वाले मकान की खुली खिड़की की ओर उसने देखा—

वह व्यक्ति अपनी खाट पर बैठा हुआ है और उसकी दोनों आँखें कुन्ती के शरीर पर गड़ी हुई हैं। तेज चाकू के चमकते हुए फल जैसी उसकी आँखें हैं।

कुन्ती ने अपना आँचल सँभाला और एक झटके से खिड़की बन्द कर दी।

उसका सारा शरीर कांप रहा है। क्या उस व्यक्ति की आंखों में विष है।

वह व्यक्ति ठीक इसी तरह उसकी ओर हमेशा देखता रहता है, जब भी वह दुःखी, अपमानित या विचारों में मग्न होती है। जब-जब उसने यह गौर किया है, तब-तब वह हट गयी है।

लेकिन वह व्यक्ति अपनी जगह से कभी नहीं हटता। उसके ताकने का ढङ्ग बहुत बुरा है। ऐसी गिद्ध दृष्टि से देखता है जैसे उसे निगल जायगा। लोलुप दृष्टि।

एक दिन उसने इशारे से माँ को यह बात बतायी थी। कुन्ती बोल नही सकती। गूंगी है।

माँ ने उल्टे उसे ही डाँट-डपट दिया था—देखता है तो तेरा क्या छीन लेगा। देखने दो। अभी दो-तीन महीने पहले ही उसकी बहू मरी है। जैसे वह बहुत शरीफ आदमी है।

जरा रुक कर बोली—अपनी ही जात का है। नाम है जगदीश प्रसाद।

फिर न जाने क्या बडबड़ाती हुई दूसरी ओर चल दीं।

माँ की ओर कुन्ती देखती रही। उसकी आँखें और बड़ी हो गयी। फिर वहाँ से उठकर धीरे-धीरे उसी खिड़की के पास आ गयी।

रात को बिस्तरे पर लेटे-लेटे अंधेरे में वह बहुत देर तक छत की ओर देखती रही।

जगदीश प्रसाद नाम तो ऐसा बुरा नहीं है। पर उसके ताकने का ढङ्ग बहुत बुरा है।

उसकी पत्नी मर गयी है। तो वह विधुर है।

उसकी पत्नी देखने मे कैसी थी ? क्या मालूम !

निश्चय ही बहुत सुन्दर नहीं थी। शायद काला रंग, कुछ मोटी, चौड़ा मुँह और चपटी नाक थी। अच्छा, यह भी मान लिया कि वह गोरे रंग की थी, पर सूरत-शक्ल ? अवश्य ही अच्छी नहीं थी।

नाम ? कुन्ती तो हो ही नही सकता । अगर उसका भी नाम कुंती होता तो कैसी अजीब बात होती ।

ओह, उसकी पत्नी मर गयी है । शायद इसीलिए इस तरह देखता है । यह कारण भी तो हो सकता है ।

देखने का ढङ्ग इतना बुरा तो नही है । हाँ, कुछ लोलुपता जरूर है । ऐसा तो होगा ही क्योंकि पत्नी मर गयी है । शायद उसकी पत्नी से कुन्ती की शक्ल बहुत कुछ मिलती-जुलती हो, यही बात होगी ।

सूरत-शक्ल से वह व्यक्ति इतना बुरा नहीं है । हाँ, उसके बाल हमेशा बिखरे रहते है । पत्नी तो है ही नहीं, फिर बाल काढ़ने के लिये कौन कहे ? लेकिन इन बालों को ही कैसे अच्छे ढंग से काढ़ा जा सकता है ?

कुन्ती बहुत अच्छे बाल काढ़ना जानती है । अगर वह इन बालों में हाथ लगाये तो सूरत ही बदल जाय ।

ऐसी बहुत-सी बातें सोचते-सोचते कुन्ती को नीद आ गयी । उस रात बसे बहुत अच्छी और गहरी नीद आयी ।

ठीक ऐसा ही एक स्वप्न कुन्ती ने अपने जीवन में दो-ढाई साल पहले देखा था ।

नाम था रमेशचन्द्र ।

इसी मकान की दूसरी मंजिल पर उसने कमरा किराये पर लिया था । उसके पास कुछ किताबें, टीन का एक छोटा-सा बक्स और वह स्वयं था ।

सारे दिन जाने कहाँ-कहाँ घूमता-फिरता था, किसी को पता नहीं। एक ने कहा था, कनवेसर है । दूसरे ने कहा—नहीं, लेखक है ।

धूप की वजह से उसका गोरा मुख लाल हो जाता और कभी पीला

पड़ जाता था था। मानो दिन भर की सारी धूप उस पर से ही गुजरी है।

उसे देखकर ममता होती थी। हाँ, कुन्ती को बहुत दया आती थी। यहाँ उसका अपना कोई नहीं था, सिर्फ विधवा माँ और एक छोटी बहिन देश में रहती थीं। हर महीने उन्हें रुपये भेजता था।

उसके भी बालों में कभी तेल नहीं पड़ता था। या तो उसे तेल खरीदने की फुर्सत नही थी अथवा तेल लगाने का वक्त नही मिलता था। फिर, उसे इस बात की याद भी कौन दिलाता।

माँ ने उससे जान-पहिचान कर ली थी। सिर्फ जान पहिचान ही क्यों, बल्कि काफी मेल-जोल बढ़ा लिया था। और बातों ही बातों में उसकी जात, गोत्र तथा खानदान का भी सब पता लगा लिया था। हाँ, उससे शादी हो सकती है।

शाम के वक्त रमेश थका-माँदा घर लौटता। उसको देखते ही माँ कहतीं—'आओ बेटा, बैठो। लो, थोड़ा-सा गुड़ खाकर पानी पी लो।'

कुन्ती को ही पुकारतीं और खुद किसी काम का बहाना बनाकर रसोई में चली जातीं।

कुन्ती थोड़ा-सा गुड़ और एक ग्लास पानी दे देती। चुपचाप खड़ी रहती।

रमेश भी चुप रहता, कुछ बोलता नहीं। पानी पीकर ऊपर चला जाता।

प्रायः ही ऐसा होता। माँ की असली इच्छा से कुन्ती अपरिचित नहीं थी।

लेकिन कुन्ती क्या करे? वह बोल जो नहीं सकती।

फिर भी मूक भाव से ही उनमें आँखों का आदान-प्रदान हुआ था। कुन्ती यह स्पष्ट जानती है, भावों से उपलब्धि करती है।

कुन्ती चुप। एक दिन माँ ने पूछा—'वह कभी कुछ कहता है?'

'तू बोल तो नहीं सकती, मगर कुछ लिखकर दे सकती है। अगर

ऐसा अच्छा लड़का हाथ से निकल गया तो फिर—? शायद तरस खा कर ही शादी कर ले। अच्छा सुन, आज उसके कमरे में मिठाई दे आना—'

माँ बिगड़ गयीं—'इस कलमुंही को सारी बातें बतानी पड़ेंगी। इतनी बड़ी धींगड़ी हो गयी है—अब और कितने दिनों तक मेरी छाती पर बैठकर खून पीयेगी।'

माँ के सामने से कुन्ती चुपचाप हट गयी।

उस दिन कुन्ती बहुत रोयी थी।

रात का वक्त था, प्रायः दस बजे थे।

काँपते हुए पैरों से वह सीढ़ी पर चढ़ने लगी।

कृष्ण पक्ष की रात—चारों ओर घना अन्धकार था।

जरा ठहर कर कुन्ती ने दो लम्बे साँस लिये।

उसके कमरे की तरफ बढ़ी।

कमरे में उस समय भी रोशनी जल रही थी। जमीन पर छाती के बल रमेश लेटा हुआ था। शायद कोई किताब पढ़ रहा था।

उसने धीरे से दरवाजे का कुन्डा खटखटाया।

रमेश पढ़ने में मग्न था, उसने वह आवाज नहीं सुनी।

खड़े-खड़े कन्ती घबड़ा गयी! काँप उठी।

अपने हाथ की काँच की चूड़ियों को उसने जोर से बजाया।

रमेश ने चौंक कर पीछे देखा।

'तुम—आप यहाँ ?'

कुन्ती बोल तो सकती ही नहीं।

'इस वक्त—इतनी रात में, क्या चाहिये ?'

कुन्ती ने जम्पर के भीतर से कागज का एक टुकड़ा निकाल कर आगे बढ़ा दिया। उसमें लिखा था—'मैं बोल नहीं सकती पर आपसे

प्रेम करती हूँ । अगर आप मुझसे विवाह नहीं करेंगे तो जहर खा लूँगी—मैंने यह दृढ़ निश्चय कर लिया है ।'

रमेश के माथे पर बल पड़ गये । थोड़ी देर तक कुछ सोचता रहा; फिर उसने कागज लौटा दिया । बहुत धीमी आवाज में बोला—'मैं क्या कर सकता हूँ ? आप क्या वास्तव में मुझसे प्रेम करती है—जरा और अच्छी तरह सोच-समझ कर जवाब दीजियेगा ।'

कुन्ती हक्की-बक्की होकर देखती रही । बोल तो सकती ही नहीं ।

रमेश ने एकाएक पूछा—'तुम गूंगी हो ?'

कुन्ती का सिर नीचे झुक गया । बहुत धीरे-धीरे उसने सिर हिलाया ।

रमेश ने भी बहुत धीरे से कहा—'अच्छा, अभी जाओ । इस बारे में सोचकर फिर कहूँगा ।'

सिर झुकाये और मुँह लटकाये हुए ही कुन्ती लौटी । आँखें बन्द किए हुए ही वह वहाँ से चल दी । काँपते और लड़खड़ाते हुए पैरों से उस अन्धकार में वह नीचे आ गयी ।

वह किसी से बोल नही सकती ।

अपनी वेदना या आनन्द को भाषा के द्वारा जाहिर नहीं कर सकती । मधुर आवेगों की कितनी लहरें हृदय में उठती हैं, और वे लहरें बाहर निकलना चाहती हैं, लेकिन उन्हें पथ नहीं मिलता । सिर्फ इतना ही नहीं, बल्कि सुनने का कोई उपाय नहीं है । वह बहुत-सी बातें सुन भी नहीं पाती । मुँह के हाव-भाव और होठों के उतार चढ़ाव से बहुत कछ अन्दाज लगा लेती है, वह अभ्यस्त हो गयी है ।

सुन नहीं सकती, बोल नही सकती । फिर भी वही यौवन है । मन में रस-बोध की चेतना जागती है । आवेश के बुद-बुदे उठते है और फूट जाते हैं ।

लेकिन इस जीवन में अपने आवेशों को प्रकट करने का मौका कुन्ती को नही मिला । पुरुष की प्यार भरी दृष्टि और सबल बाहु का

स्पर्श—यह क्या इतना मूल्यवान है। उसे क्या कोई सुखदायी आश्रय कभी नहीं मिलेगा ?

रमेश चला गया।

रात की उस घटना के दूसरे दिन सुबह देखा गया कि कमरा खाली पड़ा है। किताबें, बिस्तरा और अपना सूटकेस लेकर रमेश चला गया है, जैसे भाग गया हो। किसके डर से ?—कुन्ती के ? कुन्ती क्या इतनी भयावह है ?

इसके बाद जगदीश प्रसाद।

कुन्ती स्वप्नों का जाल बुनती है।

कुछ दिन बीत गये।

उस दिन सबेरे आंख खुलते ही कुन्ती उठी और बर्तन लेकर नल के पास आ बैठी। वह सबसे पहले बर्तन मांजती है। फिर चूल्हा सुलगाती है और दाल चढ़ा देती है। तब नहाने का नम्बर आता है। इसके बाद गीले कपड़े बदलते वक्त उसी खिड़की के सामने आकर खड़ी हो जाती है। आंचल को जानबूझ कर बखेर देना, ठीक करना और फिर बखेरना, कुछ देर तक यही क्रम जारी रहता है। इसके साथ-साथ ही सामने वाले मकान के जगदीश प्रसाद की लोलुप तथा ललचायी दृष्टि का समस्त शरीर से उपभोग करना।

आजकल कुन्ती को उसकी दृष्टि से डर नहीं लगता, जलभुन कर खाक नहीं होती, गुस्से से कांपती नहीं बल्कि स्नायुओं की उत्तेजना को इससे आराम ही पहुँचता है। जगदीश प्रसाद की यह लोलुप दृष्टि अच्छी ही लगती है। उसकी आंखों की लोलुपता कुन्ती के शरीर में एक सिहरन ला देती है। लेकिन तब भी कभी-कभी कुन्ती कांप उठती है।

बर्तन माँजते-माँजते इन सब बातों को सोचने में आज उसे मजा आ रहा है।

एकाएक उसके कानों में शहनाई का स्वर गूंज उठा। ऐसा लगा जैसे कहीं पास ही बज रही है। शहनाई की सुमधुर ध्वनि ने हृदय में भावों की लहरें उठा दी। अब मानो कुन्ती का हाथ ही नहीं चलता, बर्तन धोते वक्त पानी का कुछ ख्याल ही नहीं रहता। सुर-लहरी घुमड़-घुमड़ कर हवा में गूंज रही है। शहनाई का यह स्वर अति सूक्ष्म स्नायुओं में जाकर आघात करता है। एक गहरे सुखद आनन्द की प्रेरणा देता है।

कुन्ती फिर एक बार कांप गयी।

मँजे-धुले बर्तन लेकर रसोई की तरफ बढ़ी।

लेकिन चौंक कर ठहर गयी। ऐसा लगा जैसे उसके माता-पिता उसके बारे में कुछ बातें कर रहे है।

वह अच्छी तरह सुन नही सकती। फिर भी मन का पूरा-पूरा जोर लगाकर जो कुछ भी थोड़ा बहुत अस्पष्ट सुनाई पड़ता है, उससे मतलब तो निकाला ही जा सकता है।

'तुमने लौडिया के लिये कोशिश ही नहीं की। ऐसा अच्छा लड़का था, और वह भी आज हाथ से निकला जा रहा है।'

'कौन ? वही सामने वाले मकान का जगदीश प्रसाद। उससे मैने सब कुछ कहा था। लेकिन ज्योंही लोगों को पता चलता है कि लड़की गूंगी है कि, बस सारी चातचीत खत्म हो जाती है। दूसरे, आज जहां उसकी शादी हो रही है, वहाँ से उसे बहुत सारा दहेज भी मिलेगा। हम लोग तो कुछ भी नही दे सकते थे।'

'इससे क्या हुआ। अपनी टोपी उसके पैरों में रख देते, गिड़-गिड़ाते और आरजू-मिन्नत करते तो लौडिया पार हो ही जाती।'

'कुछ भी बाकी नही छोड़ा—सब कुछ करके हार गया। लेकिन जब अपनी ही लड़की में नुक्स है तो फिर बताओ मै क्या करूँ ?'

'अच्छा, अब न हो तो मण्डी वाले उस दूसरे लड़के की ती कोशिश करो।'

अब कुन्ती को और कुछ नहीं सुनना था।

आज जगदीश प्रसाद की शादी है। उसी के यहाँ बजने वाली शहनाई कुन्ती के हृदय में वेदना की लहरों को जगा रही थी। हाथों से बरतन गिरे जा रहे थे। किसी तरह गिरती-पड़ती कुन्ती फिर नल के सामने आ बैठी।

मँजे-मँजाये हुए बर्तनों को वह फिर बहुत जोर-जोर से और जल्दी-जल्दी माँजने लगी।

तपोदिक

'देखो न,' ट्रेन के चलते ही शंकर ने कहा—'देवघर भी तुम्हें बुरा नहीं लगेगा।'

'और अगर बुरा भी लगे तो क्या किया जा सकता है?' झुँझलाये हुए स्वर में सुलेखा ने जवाब दिया—'हमें अच्छा लगे या बुरा, तुम्हें इसकी क्या पड़ी? नौकरानियों का सा जीवन है। फर्क इतना ही है कि नौकरानी को पैसे देने पड़ते हैं, और हमें नहीं। इसलिए लोग शादी करते हैं। दोनों वक्त दो रोटियाँ खाने को दे देते हो और बस दिन भर काम करो।'

शंकर जानता है, अब और कुछ ज्यादा कहना अक्लमन्दी नहीं होगी। सुलेखा की आवाज क्रमशः तीखी ही होती जायगी। डिब्बे के और दूसरे मुसाफिर मजा देखेंगे। चुप रहना ही अच्छा है, विगत जीवन का अनुभव यही बताता है और वह एकाएक टाइम-टेबिल के पन्ने तेजी से उलटने लगा।

पर उसके लिए देवघर जाना भी जरूरी था। इसके अलावा और चारा न था। प्रायः दो ढाई साल से वह वहाँ नहीं गया है। रामलाल ने लिखा है—'मकान की मरम्मत कराना जरूरी है। पश्चिम वाली दीवार गिर पड़ी है। इसके अलावा, सामने की ओर एक दो नयी कोठरियाँ बनवानी हैं। उनके बन जाने पर काफी ज्यादा किराया मिलने की आशा है।' आज-कल के जमाने में दो पैसा ज्यादा कौन नहीं चाहता?

लेकिन कम से कम शंकर के लिये तो ये सब बातें सुलेखा को समझाना सम्भव नहीं है। उसकी अपनी बात ही प्रधान और अन्तिम है। शंकर के साले साहब इस साल बँगलौर जा रहे हैं। कुछ

दिन पहले तक यह निश्चित था कि वे भी वहीं जायँगे। पर अभी हफ्ते भर पहले रामलाल की चिट्ठी आई और शंकर ने सोचा कि इन छुट्टियों में देवघर जाकर अपने मकान की मरम्मत न करने पर, फिर जाना मुश्किल होगा।

फिर, देवघर भी ऐसी कौन-सी बुरी जगह है ? आब-हवा बदलने के ख्याल से सैकड़ों व्यक्ति वहां जाते हैं। उसके विवाहित जीवन के शुरू-शुरू के दिन भी तो वहीं बीते थे। टाइम टेबिल की संख्याओं और स्टेशनों के नाम पर नजर गड़ाये आज शंकर एकाएक दार्शनिक हो गया है। उसके सामने कितनी जल्दी दुनियाँ रंग बदल रही है ! कितनी जल्दी ! वह मानो वैज्ञानिक है, बहुत दूर बैठा हुआ टैलिस्कोप में मंगल ग्रह को देख रहा है—अभी तो उस दिन वहां नारंगी जैसा रंग था, अब कहाँ गया ?

देवघर ही अच्छा है। मन ही मन शंकर ने सोचा, देवघर जाना ही ठीक हुआ। छुट्टियों में इतने लोग क्यों बाहर जाते हैं ? वर्ष के अधिकांश दिनों में तो मनुष्य जन-समुद्र में तैरता रहता है। परिमित स्थान में धक्का-मुक्की करता हुआ नियमित दिन काटता है। मन ऊब जाता है। छुट्टी के दिन मानव-समुद्र से निकल कर किसी एकान्त स्थान में जाना उसे अच्छा लगता है। जान पहिचान के आदमियों की भीड़ से निकल कर, उनकी एक सी बातों से अपना पिण्ड छुड़ाकर—वह चाहता है, नील निर्जन द्वीप। इसलिए देवघर ही अच्छा है।

लेकिन सुलेखा को यह कौन समझाये ? जहरीले फोड़े की तरह वह पिछले चार-पाँच दिनों को बुरा बना रही है। शकर ने भी एक बार सोचा, चाहे जितना भी नुकसान क्यों न हों, वह भी बंगलौर जायगा। लेकिन सुलेखा अड़ गई। ऐसी दया की उसे कोई जरूरत नहीं वह अब बंगलौर नहीं जायगी। वह तो देवघर ही चलेगी। जली-कटी सुनायेगी। छुट्टियों के दिनों को वह विषाक्त बनायेगी। आश्चर्य !

पटना के रंगहीन आकाश का यहां कोई आभास नहीं है। ट्रेन

बहुत दूर चली आई है। अश्विन का नया आकाश, ठंड का मामूली सा स्पर्श हुआ है। अभी खेतों का पानी नहीं सूखा। फसल चमकीली और हरी है।

छिपी हुई नजरों से सुलेखा को देखकर शंकर ने सिगरेट जलायी। शंकर को खिड़की पर सिर रखे सिगरेट पीने में बड़ा मजा आता है। उसे इस वक्त बहुत अच्छा लग रहा है सिर्फ सुलेखा अगर समझती!

सुलेखा ने डिबिया से पान निकाला। एक अपने मुँह में रखा और डिबिया बढ़ा दी। शकर जानता है, यह शुभ लक्षण है। अब कुछ देर और चुपचाप रहना होगा। उसके बाद शायद यह जहरीला कुहासा दूर हो जायगा।

शंकर ने उत्साहित होकर दूसरी सिगरेट जलायी। इस बीच सब मुसाफिर आराम से बैठ गए हैं। दुबले-पतले, कमजोर, पीली आँखें, परिस्थितियों से दबे हुए मनुष्यों की भीड़। आज छुट्टी का दिन है। इन्हें कई दिनों बाद दफ़्तर के रजिस्टरों और फाइलों से छुटकारा पाकर बाहर की ओर नजर दौड़ाने का मौका मिला है! कितने दिनों बाद? कई दिनों की यह छुट्टी उनके व्यवहृत पुराने शरीर पर मानो जीवन की नयी पालिश करेगी। काम का डर नहीं। नयी पालिश, साफ समझ में आता है।

यह विश्वास नहीं होता कि आज जैसे सुहावने मौसम में ट्रेन यात्रा करना किसी को बुरा भी लग सकता है। खराब कैसे लग सकता है? बँगलौर हो या देवघर, यह जाना ही सबसे बड़ी बात है। शकर ने सोचा, इस जाने में ही तो सबसे ज्यादा सुख है। यही तो सब कुछ है। नागरिक जीवन छोड़ चले आना। दोनों ओर खेतों में हरा चारा और ऊपर आश्विन का रंग बदलता हुआ आकाश! खराब कैसे लग सकता है?

शंकर अब सुलेखा को काफी पहचान गया है। उसके मन का चमड़ा उम्र के साथ-साथ कड़ा हो गया है। प्रकृति का यह आश्चर्यमय

परिवर्तन वहां जरा भी अनुभूति पैदा नही करता। गृहस्थी के स्थूल दबाव में वह ठीक रहता है।

सिगरेट का एक कश जोर से खींचते हुए शंकर ने सोचा, समुद्र में पाये जाने वाले एक जानवर से सुलेखा बहुत कुछ मिलती-जुलती सी है। वह जानवर कभी भी ऊपर तैर कर नहीं आता। उसे सुनहरे आकाश और चमकते हुए सूर्य की जरूरत नहीं होती। पानी का दबाव कम होने पर वह फूल जाता है; उसका दम घुटने लगता है और फट जाता है।

सुलेखा भी ऐसी ही है। गृहस्थी के स्थूल दबाव के बाहर वह नहीं आना चाहती। एकान्त में उसका दम घुटने लगता है, मानो सुलेखा की मौत हो जाती है। इसी कारण वह बंगलौर जाना चाहती थी। वहां बहुत व्यक्ति हैं, कोलाहल है। वहाँ स्थूल गाहस्थिक दबाव है। वहाँ वह स्वस्थ रहती है।

सुलेखा चुप बैठी है। शंकर ने डिबिया में से पान निकाला। शकर ने सोचा, इस बार जरा दूसरे ढंग से बातें शुरू करने पर शायद वह ठीक हो जायगी। अब वह चतुर वैज्ञानिक हो गया है। सुलेखा जैसे कठिन और सूक्ष्म यन्त्र को कायदे से चलाने की उसमें कुशलता आ गयी है। कब और किस वक्त कौन सी चाबी देनी पड़ती है, यह वह सीख गया है। बीच-बीच में अब भी एकाध बार गलती हो जाती है। लेकिन हाँ, ऐसी भूल बहुत ही कम होती है।

'जरा-सा चूना देना ?'

कागज में लिपटे हुए सूखे चूने की पुड़िया सुलेखा ने आगे सरका दी।

'चाय पीने की बड़ी इच्छा हो रही है। अगले स्टेशन पर चाय पी जाएगी।'

सुलेखा ने मुँह घुमाया—'हां, स्टेशन की गन्दी चाय पी कर बीमार हुए बिना कैसे रहा जा सकता है !'

चलो ! शंकर ने मन ही मन आराम की सांस ली। उसकी बातों

का तीर निशाने पर लगा है। उसने कुछ उत्साहित होकर कहा—'स्टेशन की चाय पीने से कोई बीमार पड़ता है ? पागल ! गरम पानी में भला कीटाणु जिन्दा रह सकते है ?'

'नहीं, जिन्दा थोड़े ही रह सकते है ? मैले गन्दे प्यालों को तो वे बहुत धोते हैं न। हजारों तपेदिक के रोगियों के ओठों से लगते होंगे।'

'नहीं-नहीं कुल्हड़ में लूँगा। उसमें तो·····'

'तुम्हारी जो इच्छा ! तुमसे बहस कौन करे ? एक बात भी अगर मानते·····'

'नहीं-नही, मैं यह कब कह रहा हूँ : अगर आप, तुम्हारी राय न हो तो·····'

'बस, रहने दो। मेरी क्या राय ! देखो, ये बेकार की बातें मुझे पसन्द नहीं।'

कुछ उदास होकर शंकर चुप हो गया। इस बात का यहीं खत्म हो जाना अच्छा है। थोड़ी देर खामोशी रही।

'चलते वक्त" जरा हिल-डुल कर सुलेखा ने खुद ही शुरू किया—'जरा कह भर देते। यह बांदी तो थी ही, फ्लैक्स में चाय बनाकर साथ ले आती।'

'इतना हँगामा करके चाय-पीने की क्या जरूरत ?' कुछ ठहर कर शंकर ने कहा—'चाय के बिना कोई तकलीफ नही हो रही है। शाम को वहां पहुँच कर पी लेंगे। रामलाल ने सब इंतजाम कर रक्खा होगा।'

'हाँ, रामलाल तो तुम्हारे लिए चाय लेकर बैठा होगा। खाने का प्रबन्ध भी कर रखा हो तो गनीमत है।'

'हाँ, हाँ; वह बहुत होशियार है। देखना, सब कुछ ठीक कर रखा होगा।'

'अच्छी बात है।' सुलेखा चुप हो गयी।

बात चीत में झुँझलाहट कम होती जा रही है। यह अच्छा लक्षण

है। शायद थोड़ी देर बाद ठीक हो जायगी। शंकर ने आराम की सांस ली।

लेकिन एक घण्टे भी इन्तजार न करना पड़ा। अगले स्टेशन पर गाड़ी के ठहरते ही सुलेखा ने खुद चाय वाले को बुलाया। दो कुल्हड़ चाय खरीदी। फिर बोली—'चाय-चाय! यह लो, अब सन्तोष है।'

शंकर हँसा। सन्तोष है। निश्चय।

ट्रेन फिर चल दी और इसके बाद से उनका अनावश्यक व्यवधान कम होता गया। शंकर यह नहीं सोच सका था कि इतनी जल्दी सुलेखा का मिजाज ठीक हो जायगा।

दूर पर हरी पृथ्वी की सीमा घूम रही है। खिड़की से देखने मे बड़ी अच्छी लगती है। पृथ्वी का ग्रामोफोन घूम रहा है, शब्द-छन्द और झंकार में निराला है। कभी भागने वाले पेड़ पीछे निश्चिन्त नीला आकाश। और पाउडर-पफ जैसे मेघ मानो याद दिलाते हैं, यह बहुत, बहुत पुरानी पृथ्वी और सुनहरा आकाश है।

शंकर खुश था; उसे यात्रा अच्छी लग रही थी।

'अबकी एक दिन वैद्यनाथ धाम चलेंगे, क्यों?'

'बुड्ढी होने को आई, अब मुझसे इतना ज्यादा नहीं चला जाता।'

'क्यों नहीं चला जाता?' बुड्ढी क्या! और फिर थोड़ी दूर चल कर किसी पेड़ की छाँह में सारा दिन काट देंगे। ताजी हेवा, पेड़ के पत्तों को खड़खड़ाहट.....' कहते-कहते मानो शंकर को नशा आ गया। आदमियों की भीड़, होहल्ला नहीं; हरी पृथ्वी और अश्विन का आकाश। शांत संध्या। पूरा एक दिन काटना है, और बीच-बीच में सिगरेट पीना। इस वक्त शंकर को ख्याल न आया कि इससे अच्छा और भी कुछ हो सकता है!

शाम को सात बजे ट्रेन देवघर पहुँची।

स्टेशन पर रामलाल हाजिर था। सफेद कमीज और साफ पाजामा पहिने, एक हाथ में लालटेन और दूसरे में लाठी लिये वह देख रहा था। बहुत दिनों बाद उसके मालिक आ रहे हैं। क्या करने पर वह खुश होंगे, यह उसकी समझ में नहीं आ रहा था। आदमी कुछ बकवादी, किन्तु बुद्धिमान है। उसकी बातें करने का तरीका और हाव-भाव सब बड़े अजीब हैं।

यहाँ शकर के चार छोटे-बड़े मकान हैं। किराया अच्छा ही मिलता है। शहर के बाहर तीन-चार बीघा जमीन में ये मकान बने हुए हैं, बाकी अहाते में थोड़ा-सा बगीचा। आम, अमरूद और पपीता इत्यादि के पेड़ लगे हुए हैं। फूलों के भी पौधे हैं।

यह सब शंकर की पैतृक सम्पत्ति है। बहुत दिन पहले की खरीदी हुई। उन दिनों जमीन बहुत सस्ती थी। अब तो कीमत बहुत ज्यादा बढ़ गयी है।

रामलाल बहुत पुराना नौकर है। उस पर ही यहाँ के सब कामों का भार है, मकानों की मरम्मत से लेकर किराया वसूल करना और शकर को भेजना। आदमी बहुत विश्वासी है। अब तक उसके काम में कभी कोई गलती नहीं पायी गई है।

रामलाल ने उन्हें झुक कर सलाम किया। सूर्यास्त हुए काफ़ी देर हो गई है। सन्ध्या का मिटता हुआ आकाश नीले आकाश में कुछ अटक-सा रहा है। ठंडी हवा से शरीर में सिहरन होती है, लेकिन अच्छा लगता है।

कुली के सिर पर समान रखकर रामलाल ने कहा—'बाहर मैंने गाड़ी ठीक कर रक्खी है, आइये।'

सुलेखा वाकई खुश हो गई। 'चलो, चलती हूँ।' फिर पति ने कहा—'चलो जी चलें। काफी दूर है, जाने में ही घण्टा भर लग जाएगा।'

चैकर को टिकट देकर वे घोड़ा-गाड़ी में बैठ गए। असबाब रखवा कर रामलाल कोचवान के पास जा बैठा। शंकर ने निश्चिन्त हो सिगरेट जलाई। गाड़ी चल दी।

वे अपने मकान पहुंचे। आकाश में उस वक्त प्रकाश का आभास भी नहीं था। आश्विन के स्वच्छ आकाश में तेज और चमकीले तारों का जमघट था।

मकान के नौकर-चाकर गाड़ी की आवाज सुनते ही दौड़ कर बाहर आए। गाड़ी का दरवाजा खोलकर रामलाल खड़ा हो गया। मालिक आ गए हैं। स्पष्ट है कि ये लोग उत्तेजित और खुश हैं। अंधेरे मे ही सामान उठाकर वे अन्दर चले गए। रामलाल लालटेन से रास्ता दिखा रहा है। गेंदा के फूलों की ठण्डी सुगन्ध आई।

इस बड़े अहाते में कुल पांच-छः छोटे-बड़े मकान हैं। बीच वाला ही सबसे बड़ा और अच्छा है। इसी में वे रहेंगे। इसलिए वह किराए पर नहीं उठाया गया है। तीन मकानों में किराएदार आ गए हैं। दूसरे भी लगे हुए हैं, दो-एक दिन में किराएदार आने ही वाले हैं।

अन्धकार। दूसरे मकानों में लालटैन जल रही है। मकान का पुराना कुत्ता अचानक जाने कहाँ से दौड़ता हुआ आ गया। सुलेखा के हाथ से उसने पहले बहुत रोटियां खाई हैं।

'देखो, तुम्हारा 'बेलू' आया। तुम्हें नहीं भूला।' शंकर ने कहा।

सुलेखा ने झुककर कुत्ते के सिर पर हाथ फेरना शुरू किया। 'अरे, कैसा दुबला हो गया है! मालूम होता है, तुम लोग इसे खाना नहीं देते।'

लालटेन लिए रामलाल खड़ा था; बोला—'खाने को तो देते हैं। रोज अपने हाथ खिलाता हूँ। बदमाश कहीं का, इधर-उधर घूमता फिरता है। लेकिन खाने के वक्त ठीक हाजिर हो जाता है। बहुत शैतान हो गया है।'

खिड़की की बायीं ओर करीब पन्द्रह-बीस हाथ दूर, एक छोटा

सा मकान है। उसमें किराएदार आ गया है। दोनों किवाड़ खुले हुए हैं। दस ग्यारह साल की एक लड़की उन्हें देख रही है। एक छोटा लड़का उसकी धोती पकड़े बगल में खड़ा है।

सुलेखा ने यह देखकर कहा—'खैर, अब हमेशा मुंह बन्द किए वक्त नहीं गुजारना पड़ेगा। वे लोग कौन हैं रामलाल ?'

'वे मिश्रा जी की पत्नी हैं; अभी महीने भर पहले आयी हैं। अभी कुछ दिन और रहेंगी।'

यहाँ से रास्ता दाहिनी ओर मुड़ गया है। जरा और आगे बढने पर बड़ा मकान है। पहले बरामदा, फिर कमरे। कमरे में लालटेन जल रही है। नौकरों ने सारा सामान बरामदे में एक ओर रख दिया है।

रामलाल बहुत व्यस्त है। उसने कहा—'भीतर चलिये। मैं चाय और फल लेकर आता हूँ।'

चाय का नाम सुनते ही शंकर खुश हुआ। कुछ देर के लिए रामलाल अदृश्य हो गया।

कमरे में नयी सफेदी करायी गयी है। चूने की गन्ध आ रही है। कमरा साफ-सुथरा है। फर्श धोकर, झाड़ बुहार कर सब ठीक कर रक्खा है। छोटे ब्रेकेट के ऊपर रक्खी हुई बड़ी लालटेन से काफी रोशनी हो रही है। यह बैठक है। बीच की गोल मेज पर बागीचे के ताजे फल तश्तरी में रक्खे हैं। दूसरे फल भी हैं।

सुलेखा भी खुश हो गई। लालटेन लेकर वह इस कमरे से उस कमरे में आने-जाने लगी। आराम कुर्सी पर शंकर ने हाथ-पैर फैला दिए। इस बीच रामलाल लौट आया। हाथ में एक बड़ी ट्रे, दो प्याले गरम चाय, तश्तरियों में मिठाई और नमकीन चीजें हैं। इस आदमी की पसंद बुरी नहीं है।

बीच की गोल मेज पर, सब चीजें रख कर, रामलाल हुक्म की

राह देखने लगा। 'अरे आओ, कुछ नाश्ता कर लो,' शंकर ने पुकारा। सुलेखा आ गई।

'वाह, रामलाल वाकई होशियार है। सब कमरे साफ-सुथरे हैं। अरे!' ट्रे की ओर देखकर सुलेखा मानों बच्चों जैसी हो गई—'यह सब तुम कब लाए, रामलाल?'

मेज के सामने रामलाल ने दो कुरसियां लगा दी। ओठों पर शरमिंदा होने की हँसी।

'प्याले-तश्तरियाँ किसी भी चीज की कमी नहीं। ये सब कहाँ से आयीं?'

'जी, मैं मिश्राजी के यहाँ से ले आया हूँ। उनके यहाँ ही आज आप लोगों के खाने का प्रबन्ध किया है। बहुत देर नहीं है। उन्हीं का आदमी कोई घण्टे भर बाद आकर खाना दे जायगा।'

'सुनो, पहले हाथ-मुँह धो लो। स्नान गृह में साबुन है। रामलाल बिस्तरा खोलकर तौलिया निकाल दो।'

रामलाल ने फौरन ही बैडिंग खोलकर तौलिया निकाल दिया। शंकर हाथ-मुँह धोकर आया। सब चीजों को रामलाल ने यथास्थान रख दिया। बगल वाला कमरा सोने के लिये है। थोड़ी देर में ही बिछौना बिछाकर और मसहरी लगाकर रामलाल ने बिलकुल ठीक कर दिया।

'आज ऐसे ही रहने दीजिये। कल बता दीजियेगा तो सजा दूंगा।'

सुबह जो व्यक्ति आग का गोला था, शाम को वही पानी हो जायेगा, सच पूछो तो शंकर को इसकी आशा न थी। मन ही मन वह रामलाल का कृतज्ञ हुआ। खैर, छुट्टियाँ मजे में बीतेंगी।

रात का भोजन खत्म हुआ। तब वे बरामदे में कुर्सी पर बैठे हुए बातें कर रहे थे। उन्हें नींद नहीं आ रही थी। यहां बिताये हुये दिनों की मधुर स्मृति से आज की रात मानो भर गई है: विचित्र अन्धकार। सदर दरवाजे के करीब यूकलिप्टिस के पेड़ों की लम्बी-

लम्बी शाखाएँ हिल रही हैं। सुलेखा के पैरों के पास बेलू सो रहा है।

आकाश के तारों में नयी चमक है। हवा में हल्की सर्दी है। पूर्व के आकाश में धीरे-धीरे चन्द्रमा निकल रहा है, मानो आज चाँद स्वप्न देख रहा है। अब भी उसकी नींद अच्छी तरह नहीं टूटी है। अलसायी हुई आँखें हैं। यूकलिप्टस के पत्ते हिल गये। यह कुछ नहीं हवा है।

और शंकर को यह लगा कि उसने बहुत दिनों से इस तरह चन्द्रमा का रूप नहीं देखा। चन्द्रमा को वह भूल गया था। भूल गया था! कितने दिनों से? बोलो, कितने दिनों से? आज अनेक वर्षों बाद यहाँ आकाश हाथ बढ़ा कर उसे छूने आया है। लेकिन अब वह बहुत आगे बढ़ गया है। अब वे दिन नहीं हैं। नहीं तो वह सुलेखा से गाने के लिए कहता। गाना! ओफ, कितने दिनों से उसने सुलेखा का सङ्गीत नहीं सुना!

अन्धकार का पर्दा धीरे-धीरे उठने लगा। यहां की छवि स्पष्ट हो रही है। कुछ पहिचानी, कुछ अनजानी; कुछ भूली हुई यहां की छवि।

उस वक्त पौने ग्यारह बज थे। शंकर ने कहा—'चलो, अब सोना चाहिये। सारा दिन ट्रेन में कटा, तुम्हें थकावट नहीं हुई?'

'नहीं, कुछ विशेष नहीं।'

सुलेखा कुछ देर चुप रही। कुछ सोचा। फिर वह खड़ी हो गयी और बोली—'चलो।'

इसके एक क्षण बाद ही पास की कोठरी से खाँसी की आवाज आयी। खों-खों, मानो इसका अन्त नहीं, छाती को चीरकर निकलने वाली खाँसी की आवाज। उन्होंने एक दूसरे की ओर देखा। इससे पहले भी उन्हें ख्याल हुआ, उस मकान में उन्होंने खाँसी की आवाज सुनी थी। दूसरे कामों में व्यस्त थे, इसलिये ध्यान नहीं दिया था।

पर यह खाँसी जैसे रुकना ही नहीं चाहती, छाती को चीरती हुई निकलने वाली अन्तहीन आवाज। पाँच मिनट बाद आवाज बन्द हुई। तब तक वे चुपचाप स्तब्ध खड़े रहे। कमरे का थोड़ा-सा प्रकाश सुलेखा के मुँह पर पड़ रहा था। चिन्ता से उसका चेहरा पीला पड़ रहा था।

'सुनो जी,' आवाज के बन्द होते ही सुलेखा ने कहा—'मुझे आसार अच्छे नजर नहीं आते। रामलाल को एक बार बुलाओ तो। पूछो कि वे दोनों कोठरियाँ किसे किराये पर दी हैं ?'

रामलाल को हाजिर होने में देर नहीं लगी। उसको दरवाजे के पास देखते ही सुलेखा ने तेज आवाज से पूछा—'पास वाली ये दो छोटी कोठरियाँ तुमने किसे किराये पर दी हैं ?'

क्षण भर में ही रामलाल के चेहरे का रंग बदल गया, 'हुजूर, यह एक गलती हो गयी है। उन्हें कोई भी मकान नहीं दे रहा था, इसीलिये.....'

'इसीलिये तुमने एक तपेदिक के मरीज को किराये पर कोठरियाँ दे दीं ?' उत्तेजना की वजह से सुलेखा काँपने लगी।

'जी, पहले मुझे यह मालूम न था कि उन्हें कोई बीमारी है। लेकिन तीन-चार दिन से बाबू कभी-कभी जोरों से खांसते हैं, लाठी के सहारे जरा इधर-उधर घूमने की कोशिश भी करते हैं। पूछने पर कोई बात ठीक-ठीक नहीं बताते।'

'कितने दिनों से ये आये हैं ?' शंकर ने पूछा।

'जी कोई सात-आठ दिन से।'

'जैसे तुम हो,' झुंझलाये हुए स्वर में सुलेखा प्रायः चिल्ला उठी—'वैसे ही बेवकूफ तुम्हारे आदमी हैं। वे यहाँ नहीं रह सकते। रामलाल अभी जाकर उन्हें बाहर निकाल दो।'

'अरे, जरा आहिस्ता.....'

'आहिस्ता क्यों ?' सुलेखा की आवाज और भी तेज हो गयी—

'झूठ बोलकर मकान किराये पर लेते हैं। उन्हें तो पुलिस के हवाले कर देना चाहिये। अगर दूसरे लोगों को मालूम हो जायगा कि इस मकान में तपेदिक का रोगी रहता है, तो फिर सब किरायेदार चले जायँगे। कल मैं ही सब किरायेदारों को होशियार कर दूँगी। कहूँगी कि वे सब लोग चले जायँ। यहाँ लोग आबहवा बदलने आये हैं, कोई मरने तो नहीं आया है।'

पैरों के नाखून से रामलाल अब जमीन कुरेदने लगा।

'खड़े क्यों हो ? मेरी बातें नहीं सुनीं।

'तुम पागल हो गयी हो !' शंकर को यह बुरा लग रहा था—'इस वक्त भला उनसे चले जाने के लिये कहा जा सकता है ? इतनी रात में वे लोग कहाँ जायँगे !'

'यह हम क्या जानें ? सुलेखा एक भी तर्क नहीं सुनेगी—'हमने कोई तपेदिक का अस्पताल खोल रक्खा है ? फौरन उन्हें बाहर निकाल दो। बदमाश, पाजी, चोर.....'

सुलेखा को शंकर पहिचानता है। जब तक पास वाली कोठरी के किरायेदार चले नहीं जाते, तब तक वह चुप नहीं होगी। सुलेखा क्रमशः आपे से बाहर होती चली जायगी ; वह पगली हो उठेगी।

'मुझे इसीलिए यहां लाए हो ? तपेदिक के मरीज के साथ रहने के लिए ? जैसे मालिक हैं वैसे ही नौकर भी मिले हैं।...जिसने भी दो पैसे ज्यादा दे दिए बस किराए पर उठा दिया। क्यों, मालिक का नमक तुम नहीं खाते ? निकाल बाहर करो ऐसे आदमी को। विश्वासी आदमी ! पुराना आदमी ! विश्वासी होकर यह काम किया न ? तुम लोग सब कुछ कर सकते हो। हो सकता है कि यह मकान भी किसी रोगी को भाड़े पर दिया हो ?'

'नहीं बीबी जी ! ईश्वर की कसम ! ऐसा काम मैंने कभी नहीं किया। अगर मुझे पहले मालूम हो जाता तो मैं क्या उन्हें किराय पर देता ? कल सुबह ही उनके बारे में मैं खुद आपसे कहता।'

'कहने से क्या होता ? बेईमान कहीं का !' सुलेखा के क्रोध की मात्रा बढ़ रही है—'उल्लू, गधा, नालायक···'

'इस वक्त क्या किया जा सकता है ? रात बीत जाने दो·····'

'मुझे हल्ला मचाने का बड़ा शौक है न ? इस वक्त चिल्लाने में मुझे बहुत मजा आ रहा है ! उन्हें फौरन बाहर निकाल दो। और नहीं तो मैं जाती हूँ। शादी के वक्त ऐसी कोई लिखा-पढ़ी नहीं हुई थी कि मुझे तपेदिक के रोगी के साथ रहना पड़ेगा ?'

'ओफ, फिजूल की बातें क्यों कर रही हो ! वे कोठरियां यहाँ से दूर हैं। इसके अलावा···'

'चुप रहो', धमकाते हुए सुलेखा बोली—फजूल की बातें कर रही हूँ ? कहते शर्म नहीं आयी ? तुम जाते हो या मैं ही खुद जाकर उन्हें निकाल बाहर करूँ।'

शंकर सशंकित हो उठा। अभी एक झगड़ा-फसाद हो जायगा। 'सुनो देवी, आज की रात कट जाने दो। कल मैं कुछ न कुछ प्रबन्ध जरूर कर दूँगा।'

और बहुत कुछ समझाने-बुझाने पर सुलेखा कुछ ठण्डी हुई। उस रात को किसी को भी नींद नहीं आयी। एक बजे के बाद सिगरेट जलाकर शंकर रात भर बरामदे में टहलता रहा। बैठक में, आराम कुर्सी पर लेटे-लेटे सुलेखा ने सारी रात काट दी। कुछ देर सोकर और कुछ देर बकते-झकते।

शंकर के जीवन में और कोई रात ऐसी चिन्ता में नहीं बीती थी।

उस वक्त सूर्योदय नहीं हुआ था। ओस से सारा मैदान भीगा हुआ था। बिना हाथ मुँह धोये ही उस छोटी कोठरी के सामने शंकर जा खड़ा हुआ। दो छोटी-छोटी कोठरियां हैं; किराया पन्द्रह रुपये माहवार है।

शंकर ने जोर से कुंडी खटखटायी। 'भीतर कोई है ?'

दरवाजा खुला और एक विधवा स्त्री जरा-सा घूँघट काढ़े हुए बाहर निकली—'हमीं इन कोठरियों में रहते हैं।'

'ठीक है। लेकिन खाली करके फौरन चली जाइये। जो किराया पेशगी दिया है, वह वापस नहीं मिलेगा। फौरन यहां से जाइये···'

अपमानित, भयभीत और रातभर जगे हुए शंकर का चेहरा देख कर विधवा महिला थर-थर काँपने लगी। कुछ साहस बटोरते हुए बोली—'बेटा, हम निकल कर कहां जायं ? दो दिन से लड़के की खांसी फिर बढ़ गयी है। यहाँ और कोई दूसरा मकान नहीं मिलता। बड़ी मुश्किल से यहा जगह मिली है···'

'मैं कुछ भी नहीं सुनना चाहता। आप लोग फौरन चले जायँ। आप जिंदा रहें या मरें—मुझे इससे क्या मतलब ? आपके लिये मैं तो अपनी जान नहीं दे सकता।'

शंकर का चिल्लाना सुनकर भीतर से एक बीस वर्षीय युवक धीरे-धीरे बाहर निकला। दोनों गाल पिचके हुए, आखें भीतर धंसी हुई, पतला लम्बा चेहरा, सीधे खड़े होने की शक्ति भी उसमें नही थी।

'ओहो, शायद आप ही बीमार है ?' ऊपर से नीचे तक अच्छी तरह निरीक्षण करते हुए शंकर ने पूछा।

उत्तेजित हो इतनी दूर तक चलकर आने की वजह से युवक बहुत हांप रहा है, ओठ काँप रहे हैं। बड़े कष्ट से उसने कहा—'जी हाँ ! देखिये साहब, आप नाराज न हों। जरा आराम होते ही हम कोठरियाँ खाली कर देंगे। आप खुद देख रहे हैं, वह हाँफने लगा—"मुझसे सीधा खड़ा भी नहीं हुआ जाता, शंकर को चुप खड़ा देखकर दोनों हाथ जोड़ते हुए बोला—'सब परहेज कर रहा हूँ। थूक को जला देता हूँ। ब्लीचिंग पाउडर और फिनाईल···' मुँह में रूमाल ठूँस कर बड़ी मुश्किल से उसने खांसी का दौर रोका, पर खड़ा न रह सका। चौखट का सहारा लेकर नीचे जमीन पर बैठ गया।

'तुम क्यों निकलकर आए बेटा ! पानी लाऊँ ?'

'नहीं मां !' तब तक युवक सम्भल चुका था—'नहीं मां, ठीक हूँ।' फिर शङ्कर की ओर देखकर हँसने की कोशिश की—'बहुत कमजोर हो गया हूँ। ···डाक्टर ने कहा, किसी दूसरी जगह जाओ। पहाड़ पर जाने लायक रुपए हमारे पास नहीं, इसलिए कम खर्च का ख्याल कर यहाँ चला आया। मां को बहुत समझाया, जो होना है सो होकर रहेगा, इस लिए बाहर जाकर पैसे की फ़िजूल बर्बादी करने से क्या फायदा ? लेकिन माँ·····' उसकी अन्दर धँसी हुई निर्जीव आँखों ने शंकर की ओर देखते हुए हँसने की कोशिश की।

एक सिगरेट जलाकर शंकर तैयार हो गया। 'फालतू बातें सुनने का मुझे वक्त नहीं है। जानते हो, धोखा देने के जुर्म में मैं तुम लोगों को गिरफ्तार करा सकता हूँ ? मैं घूमने जा रहा हूँ। लौट कर अगर आप लोगों को देखा तो जबरजस्ती बाहर निकालने के लिए मुझे लाचार होना पड़ेगा।'

छड़ी घुमाते हुए शकर तेजी से चल दिया। युवक की मां दरवाजे का किवाड़ पकड़े तब भी थर-थर काँप रही थी।

इसी वक्त एक सुन्दर सी स्त्री उनकी कोठरियों की ओर आती हुई दिखाई दी—वह सुलेखा है। विधवा महिला ने अन्दाज से उसे पहचाना।

'सारी रात उन्हें कितना समझाया,' महिला के निकट आकर सुलेखा ने कहा—'कहा कि सवेरे ही सवेरे जाने के लिए न कहना; रहन दो। सावधानी से रहने पर डर क्या है ? और इस परदेश में आप जायेंगी भी कहाँ ? सड़क पर जाकर तो खड़ा नही हुआ जा सकता। पर उन्होंने मेरी एक न सुनी। बहुत चिड़चिड़े मिजाज के हैं। कल रात को ही कहने लगे—अभी कोतवाली जाता हूँ। हाथ-पैर जोड़कर, कसमें दिलाकर बड़ी मुश्किल से रोका।' कुछ रुककर धोती के पल्ले से दस-दस के दो नोट खोलकर सुलेखा ने कहा—'यह लो बहिन ! तुम

अपने देश पटना ही चली जाओ। मैंने तुम्हारे लिए गाड़ी लाने को कह दिया है। मैं विनती करती हूँ बहिन, उनके लौट आने से पहले ही चली जाओ। उन्हें बहुत जल्दी गुस्सा आता है, कहीं और कुछ न कर बैठें।'

कृतज्ञता से विधवा महिला रोने लगीं—'हाय, मैं अपने बेटे को नहीं बचा सकी। क्या करूँ बहिन, मेरी किस्मत।'

रामलाल ने आकर सूचित किया, घोड़ा गाड़ी आ गई है।

सुलेखा ने भी आँचल से आंसू पोंछे। उसने खुद ही वे दोनों नोट विधवा को धोती के पल्ले में बांध दिए। महिला ने रोते-रोते कहा—'आप लोगों का एहसान मैं जीवन भर नहीं भूलूँगी।·····बेटा, उठ राजा, जूता पहिन ले।'

सुलेखा के आदेशानुसार रामलाल ने उन लोगों की सब चीजें गाड़ी में रख दीं। पन्द्रह मिनट के अन्दर वे रवाना हो गए।

उस वक्त पूर्व दिशा में सूर्य की सुनहरी किरणें चमक रही थीं।

इज्जत की खातिर

नीलकण्ठ की समझ में यह नहीं आया कि रामू सेठ का इतना बड़ा और पुराना कारोबार क्यों और कैसे चौपट हो गया ? पर वह अच्छी तरह यह जान गया कि अब उसकी नौकरी यहाँ खत्म हो गयी।

रामू की गेहूँ की आढत थी। यहाँ पच्चीस साल से बही-खाता लिखते-लिखते नीलकण्ठ ने यह समझ लिया था कि जिन्दगी का बाकी हिस्सा भी यों ही कट जायेगा। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। उसने कई जगह दो तीन दिन तक नौकरी की तलाश की। पर जब कहीं भी कुछ ठीक नहीं हुआ तो वह अपने गाँव चला आया।

उसके दोनों भाई, दिवाकर और शीतल ने काफी दिलासा देते हुए कहा—'भैया, यह अच्छा ही हुआ। अब इस बुढापे में नौकरी करना तुम्हें शोभा नहीं देता। तुम हमेशा ही तो परदेश में रहे, अब घर की ही देख-भाल करो।'

लेकिन नीलकण्ठ ने देखा कि देखभाल करने लायक कुछ नहीं है। सब कुछ व्यवस्थित ढ़ंग से चला जा रहा है। बाहर और भीतर, सब की सुव्यवस्था का भार उनकी बहू, सुशीला पर है और इस भार को वह बहुत निपुणता से निभा रही है। वह क्षण भर को भी फुर्सत नहीं पाती है। कोई दोनों देवरानियों और उनके आधे दर्जन लड़के-लड़कियों को कभी वह धमकाती है तो दूसरे ही क्षण पुचकार कर काम करने का आदेश दे देती। उसके पीठ पीछे भले ही कोई आपत्ति या शिकायत कर ले, लेकिन उसके सामने एक भी शब्द कहने का साहस किसी में नहीं है। यहाँ तक कि उसकी मधुर डाँट-फटकार दिवाकर और शीतल भी चुपचाप सहते हैं।

इसी बीच एक बार सुशीला आकर नीलकण्ठ की भी खोज-खबर ले गयी है :

"तुम्हारा स्वास्थ्य इतना खराब क्यों हो गया है ? नौकरी छूट गयी, इसकी फिक्र में ? तुम क्या हमेशा नौकरी करना चाहते हो ?'....इसके बाद जरा हँसते हुए सुशीला ने कहा—'अच्छा, आज से तुम नौकरी करो।' लेकिन दूसरे ही क्षण कुछ मालिकाना ढंग से कहा—'कुछ कामधन्धा तो है नहीं, चुपचाप बैठे हो ! जाओ, नहा धो कर खाना खाओ और फिर थोड़ी देर आराम करो ।...बेटी ताऊजी को तेल की शीशी और अँगोछा दे दे।'

सुशीला की हँसी अब भी उसे मधुर लगती है । लेकिन उसकी बातों पर वह क्षण भर को सोचने के लिये बाध्य हुआ कि क्या इसी लिए उससे भी स्नेह और शासन के स्वर में बोलेगी ? फिर काम-धन्धा नहीं आदि बातें कहना सुशीला पहले दिन से ही आरम्भ करेगी ? एक दिन का भी वह सब्र नहीं कर सकती ? और बेटी को अँगोछा और तेल लाने का हुक्म न देकर यदि वह खुद ही ला देती तो क्या उसकी शान बिगड़ जाती ?

कुछ दिनों के अन्दर ही नीलकण्ठ का दम घुटने लगा । घर में सब का एक स्थान है। जिससे जैसे भी बन पड़ा उसने वैसे ही अन्य लोगों के साथ स्वयं को मिला कर रखा है । लेकिन नीलकण्ठ ही अपने को नहीं मिला पाता।

दिवाकर की बाजार में आटे-दाल की दूकान है। सुबह सात बजे वह जाता है और रात को नौ-दस बजे लौटता है। शीतल गाँव के ही मिडिल-स्कूल में मास्टर है और एक-दो ट्यूशन भी करता है । लड़के-लड़कियाँ स्कूल चली जाती हैं और वहाँ से लौटती हैं तो कुछ जलपान कर खेल-कूद में लग जाती हैं । जो बच्चे छोटे हैं और स्कूल नहीं जाते, उन्हें आपस में मार-पीट, खेल-कूद और रोने धोने से क्षण भर फुर्सत नहीं मिलती। शीतल का सब से छोटा बच्चा सात महीने का है। पर

वही सब से ज्यादा रोता है। कार के पर्दे मानो फाड़ डालेगा। सुशीला के अलावा और किसी की गोद मे जाते ही वह सप्तम स्वर अलापता है। इसलिए प्रायः सुशीला ही उसे संभालती है।

इस घर में नीलकण्ठ को अपना स्थान नही मिलता। कोई उसकी जरूरत नही समझता। कभी-कभी वह घर खर्च देखता है, एकाध टिप्पणी भी करता है। लेकिन उसकी बात पर सुशीला, दिवाकर और शीतल—तीनों ही हँस देते है। मानो नीलकण्ठ की इस अनधिकार चर्चा को स्नेह के कारण प्रश्रय देकर वे तमाशा देखते है। घर का कोई भी बच्चा बुलाने पर भी नीलकण्ठ के पास नही आना चाहता। अगर कोई अनिच्छा पूर्वक आता है तो फौरना कोई भुलावा देकर भाग जाता है। मानों नीलकण्ठ इस घर का कोई नही है। देहली से हर महीने वह अपनी कमाई के जो रुपये भेजता रहता है, उन्ही रुपयों से मानों घरवालों का सम्बन्ध था—उससे नही। और आश्चर्य यह है कि इस घर की मालकिन सुशीला उसीकी पत्नी है। लेकिर नीलकण्ठ घर का मालिक नही है—सिर्फ सुशीला का पति है। क्योंकि नीलकण्ठ ने यह गौर किया है कि दिवाकर, शीतल और उनके बाल-बच्चों के साथ सुशीला जैसा बर्ताव करती है, वैसा ही व्यवहार वह नीलकन्ठ के साथ करना चाहती है। जब वह हंस कर या खुश होकर नीलकण्ठ से बातें करती है तो ऐसा लगता है कि वह दुलार कर रही है। जिस तरह वह शीतल के बच्चे को प्यार करती है। और जब वह नाराज होती है तब उसकी भाषा मे बोलने के ढ़ँग में पत्नी के गुप्त अनुराग या मान की बिन्दुमात्र भी झलक नही मिलती—घर की मालकिन के कठोर शासन का ही आभास मिलता हैं।

सुशीला मानो नीलकण्ठ को हमेशा ही यह याद दिलाना चाहती है कि घर में नीलकण्ठ की प्रयोजनीयता खत्म हो जाने पर भी सिर्फ अपनी शक्ति और बुद्धि के बल पर ही सुशीला ने अपना आधिपत्य

बना रखा है। सुशीला नीलकण्ठ की मुखापेक्षी नहीं है, वह अपनी शक्ति के कारण प्रतिष्ठित है।

एक दिन दोपहर को नीलकण्ठ ने सुशीला को बुलाया। काफी देर बाद उसके कमरे में सुशीला आयी। उसकी गोद में शीतल का लड़क था। सुशीला उसे सुलाने की कोशिश कर रही थी। नीलकण्ठ लेटा हुआ था। उसने सिर कुछ ऊँचा कर कहा--बहू तुम बच्चों को बहुत प्यार करती हो ?

लड़का कहीं जग न जाय, इस डर से नीलकण्ठ को धीरे-धीरे बोलने का उसने इशारा किया। कहा—'बच्चे किसे अच्छे नहीं लगते ?'

नीलकण्ठ ने कुछ सोचा और फिर कहा—'अच्छा, अगर हम एक लड़का गोद लें तो कैसा हो ? भले घर का एक छोटा सा लड़का मिल जाता--'

सुशीला को बहुत बुरा लगा—'तुम्हारा क्या दिमाग खराब हो गया है ? हमारे ऐसे चाँद जैसे बच्चे हैं मुझे कौन सा दुःख है जो किसी गैर को गोद लूँ ?'

नीलकण्ठ ने कुछ हँसी हँस कर कहा—'ओह, ये बच्चे तुम्हारे ही हैं? एक दो को अपने पेट में भी रख सकती थी।'

शायद पूरी बात सुशीला ने नहीं सुनी। क्योंकि लड़का उसी वक्त रो पड़ा और वह उसे चुप कराने मे लग गयी।

एक दिन और नीलकण्ठ ने कहा—'बहुत दिन पहले तुमने-वृन्दावन जाने की इच्छा प्रकट की थी। चलो, अब चले चलें और अगर वहाँ रह ही जायँ तो कैसा हो ?

सुशीला ने जवाब दिया—'रुपये कहाँ है ?'

'ज्यादा रुपये चाहिये। किसी भी तरह सिर्फ जाने भर का रेल

किराया हो जाय। फिर वहाँ पहुच कर भिक्षा तो मिल ही जायगी।'

'हुश। तुम्हारा मन एकाएक इतना वैरागी कैसे हो गया ? बेकारी के कारण ? दिन रात यों चुपचाप बैठे रहने से दिमाग में फालतू बातें ही आती है। बैठे रहने के बजाय जरा हाथ पैर हिलाओ, घर का काम ही करो। रसोई में टाँड़ लगा दो। लड़का अकेला ही बांस काटने गया है। उधर सब्जी पड़ी है। जब तक मैं न बताऊँ तब तक यहाँ कुछ नहीं होता। जिधर ध्यान न दो उधर ही कुछ गडबडी हो जाती है। गृहस्थी के झंझटों से एक मिनट की भी फुर्सत नही मिलती। फिर इस हालत में कहां जाऊँ और क्या करूँ ?'

नीलकण्ठ को ऐसा लगा जैसे घर की मालकिन बन जाने पर सुशीला का घमण्ड इतना बढ गया है कि वह उसकी भी परवाह नही करती। एक क्षण के लिये उसके पास बैठने की इच्छा भी सुशीला की नही होती। ऐसी पत्नी से क्या फायदा ? इससे अच्छी तो देहली की राधा थी। रामू की आढ़त में दिन भर कठोर परिश्रम करने के बाद राधा के यहाँ जाने पर उसे वास्तव मे आराम मिलता था। इसमें शक नहीं कि वह कुछ ज्यादा पैसे लेती थी, लेकिन खातिरदारी भी कम नहीं करती थी। वह सेवा करती थी, परिचर्या करती थी। ऐसा मालिकानापन दिखाने का एक दिन भी उसने साहस नहीं किया। घर के बाल-बच्चों या दिवाकर अथवा शीतल की तरह वह उसे नहीं देखती था। शृंगार कर लेने पर राधा सुन्दर लगती थी। और शृंगार करने पर ही औरतों का रूप खिलता है। वह उसका हुक्म नही टालती थी। अवज्ञा नहीं करती थी और न उपेक्षा ही दिखाती थी। वह सिर्फ उसीके लिये अपना शृंगार भी करती थी। सुशीला की तरह वह जैसे-तैसे रूप में आ कर खड़ा नही हो जाती थी।

घर की मालकिन हो जाने की वजह सुशीला का अहँकार बहुत बढ़ गया है। मानो उसे वह पति नही मानना चाहती। नीलकण्ठ ने यह लक्ष्य किया है कि सुशीला का सिर आजकल प्रायः खुला ही रहता है।

नीलकण्ठ को लगता है कि उसे चिढाने के लिए ही वह ऐसा करती है। इस ढंग से सुशीला उसका अपमान करती है। जैसे सुशीला को किसी तरह की शर्म नहीं, संकोच नही और डर नहीं। यह मानो कोई छोटा बच्चा हो या नौकर।

नीलकण्ठ ने जब भी कोई छेडछाड करनी चाही है, उसी वक्त आंखे लाल कर सुशीला ने धमका दिया है—'आह, यह क्या करते हो? धर्म-कर्म में अपना मन लगाओ। अब बूढे हुए। छिः छिः छिः।'

कभी-कभी नीलकण्ठ की यह जबरदस्त इच्छा होती है कि सब के सामने सुशील को अपमे आलिंगन-पाश में आबद्ध कर उसका अपमान करे। लड़के-लडकियों, देवर-देवरानियों, सबके सामने उसकी इज्जत में धब्बा लगाये।

एक दिन नीलकण्ठ ने शीतल से कहा—'देखो जी, औरतों पर इतना निर्भर करना ठीक नही है।'

विस्मित हो शीतल ने पूछा—'भैया तुम किसके लिये यह कह रहे हो।'

नीलकण्ठ ने जवाब दिया—"वही बहू के लिए कह रहा हूं। गृहस्थी का सारा भार उस पर छोड़ना अच्छा नही। जानते हो न, स्त्री बुद्धि बड़ी अजीब होती है।'

शीतल मुस्कुराया। उसने ख्याल किया कि लोगों को दिखाने के लिये ही भैया इतने भलेमानस बन रहे हैं। अपनी पत्नी की सारी गृहस्थी की मालकिन होने पर किसे आनन्द नही होता, कौन पति गौरवान्वित नही होता?

शीतल की मुस्कराहट ने उसके मन के भाव ताड़ लिये। पर वह अपने मन के भाव शीतल को कैसे समझाये? पति के मालिक होने पर पत्नी का गौरव बढ़ता है। पर जहाँ पति मालिक न हो, वहाँ अगर पत्नी मालकिन हो तो····तो? पति सब के सामने हास्यास्पद होता है,

व्यंग का पात्र बन जाता है। अगर घर में पति का मान हो तो वह पत्नी की इज्जत भी बढा सकता है। मगर सिर्फ पत्नी की ही इज्जत हो तो पति और भी छोटा हो जाता है।

नीलकण्ठ को बेचैनी का कारण सुशीला की समझ में नहीं आता। बल्कि उसकी चपलता और रसिकता से नीलण्ठ की चरित्र-हीनता ही सुशीला के सामने स्पष्ट हो उठती है और घृणा से उसका शरीर सिहर उठता है।

कुछ वर्ष पहले ही सुशीला कुलगुरू गोस्वामी राधा वल्लभजी महाराज से दीक्षा ले चुकी है। चिट्ठी लिख कर नीलकण्ठ से अनुमति लेने का समय नहीं था, क्योंकि दीक्षा का उपयोगी दिन सिर्फ उसी रोज था। आजकल वह गृहस्थी के झंझटों से वक्त निकाल कर पूजा-पाठ इत्यादि ही ज्यादा करती है। इसी में उसे आनन्द मिलता है। रसराज श्यामसुन्दर की लीला के अलावा अब और किसी भी रस की ओर सुशीला का मन नहीं जाता। नीलकण्ठ की छेड-छाड़ उसे अजीब लगती है, अस्वाभाविक मालूम होती है। उसे नीलकण्ठ की हँसी-मजाक और लड़-छाड से चिढ है। चिढ़ ही नहीं घृणा है।

इधर नीलकण्ठ भी बहुत बेचैन हो उठा है। सुशीला की यह अति सात्विकता उसका जबरदस्त अपमान है। सुशीला की गम्भीरता और प्रवीणता जैसे उसका हमेशा उपहास करती है। सुशीला को देख कर आकर्षित होने लायक, प्रलुब्ध होने योग्य कुछ नहीं है, ऐसी बात नहीं, बल्कि अपनी मर्यादा बचाने के लिए उसको नीचे गिराना जरूरी है। सुशीला का अपमान किए बिना यह कैसे प्रमाणित होगा कि नीलकण्ठ उसका पति है—नीलकण्ठ उससे ऊँचा और बड़ा है।

पहले तो नीलकण्ठ ने घर के मालिक बनने की कोशिश की। पर अपनी कमी और अनभिज्ञता का उसने स्वयं अनुभव किया। नौकरी

करते-करते वह सिर्फ नौकरी करने लायक ही रह गया था। गृहस्थी मे सब ओर नजर रखने लायक शक्ति उसमे नही रही। इतना झमेला झंझट और गोलमाल भी उसे पसन्द नही है। इसके अलावा सब से बडी बाधा सुशीला है। नीलकण्ठ के कुछ कहते या करते ही सुशीला फौरन आ पहुँचती है—'तुम यहाँ क्यों, सब बर्बाद कर दोगे और कुछ तुम से होगा भी नही। जाओ, यहाँ से जाओ।' अगर वह किसी लड़के को कुछ काम करने का आदेश देता है तो सुशीला उस आदेश को रद्द कर देती है। कहती है—'लडके को तुम बाजार भेज रहे हो? तुम्हारी अक्ल की बलिहारी। और वह स्कूल कब जायगा?' सुशीला अपनी गृहस्थी में जरा भी हस्तक्षेप सहन नही कर सकती। जरा-सा भी अधिकार देना नही चाहती।

उस दिन दिवाकर और शीतल के साथ गृहस्थी के बारे में सुशीला बातें कर रही थी—'इस बार रामेश्वर को गन्ना नहीं काटने देंगे। वह ईख चुरा कर शहर में उसका रस बेचता है।'

एकाएक नीलकण्ठ ने आकर कहा—'क्यो बहू, इस वक्त तो तुम बड़े मजे में रस की बातें कर कर रही हो।'

तीनों ही जैसे शर्म से मिट्टी में गड़ गये। पर दूसरे ही क्षण सुशीला ने शासन के स्वर मे कहा—'तुम यहाँ क्यों आये? जाओ यहाँ से।'

नीलकण्ठ के स्वर में तब भी कौतुक था—'बिना आए रहा नही गया, तुम्हारे बिना मन नही लगता।'

बरामदे के कोने में बैठा दिवाकर का बड़ा लड़का पढ़ रहा था। वह पढ़ना बन्द कर इधर-उधर देखने लगा। दूसरे लड़के-लड़कियां भी आस-पास ही घूम रहे थे। बगल के कमरे में शीतल की पत्नी, लीला दूध निकाल रही थी। जाते वक्त वह खिड़की से उधर झांक कर मुस्कुरा पड़ी। सुशीला की दृष्टि से कुछ भी नही बचा। अब वह बरदाश्त न कर सकी। चिल्ला कर बोली—'बुढ़ापे में तुम्हे क्या ह

गया है ? तुम यहाँ से नहीं जाओगे ?'

'क्या, क्या कहा ?' कहने के साथ नीलकण्ठ चिल्ला उठा और फौरन ही उसने सुशीला के गाल पर बड़े जोर से कई थप्पड़ जमा दिए।

एक क्षण तक तो दिवाकर और शीतल स्तम्भित रहे किन्तु दूसरे ही क्षण उन दोनों ने नीलकण्ठ का हाथ जोर से पकड़ लिया। दिवाकर ने जोर से कहा—'छिः' छिः ! हमारी भाभी इस गृहस्थी की मालकिन है। वे हमारी मा के समान हैं और उन पर ही तुम हाथ उठा रहे हो ?'

नीलकण्ठ ने अपना हाथ छुड़ाने की कोशिश करते हुए कहा—'तुम्हारी वह मा हो सकती है, लेकिन मेरी तो नहीं है। मेरी तो वह जोरू है।'

क्या से क्या हो गया। नीलकण्ठ का इरादा था कि रसिकता और परिहास द्वारा वह सबके सामने सुशीला को उल्लू और बेवकूफ बनायेगा। लेकिन मार बैठा थप्पड़। नीलकण्ठ को इसका दुःख नही हुआ। बल्कि ऐसा लगा कि इससे उसका उद्देश्य ज्यादा सार्थक हुआ, गृहस्थी में इससे उसकी इज्जत ज्यादा प्रमाणित हुई। और आलिंगन-चुम्बन की अपेक्षा ऐसी पत्नी को मारने में ही जैसे उसे बहुत ज्यादा आनन्द मिला।

पैटमैन की बीवी

तिवारीजी की नौकरानी 'डिसमिस' कर दी गई। यह कोई नई बात नहीं है, ऐसा तो हमेशा होता रहता है।

उस समय शाम हो चुकी थी।

तिवारीजी की नौकरानी गङ्गा धूप-सामग्री देने जा रही थी। सहसा तिवारीजी की पत्नी विलायतो बीवी ने उसे जोर से पुकारा—'गङ्गा इधर चल!'

गङ्गा डरती-डरती आकर खड़ी हो गई। इतने आदमियों के सामने सिर उठा कर खड़े होने का, उस का साहस न हुआ। वह दीवार से चिपक कर, अपराधिनी की तरह सिर नीचा किये चुप खड़ी रही।

तिवारीजी कुछ व्यङ्ग के स्वर में बोले—'उसी वक्त कहा था कि छोटी जात की औरतें अच्छी नही होतीं। सूरत देखते ही उनका चरित्र मालूम हो जाता है। खैर, अब बात बढ़ाने से कोई फायदा नहीं; इसे आज ही निकाल बाहर करो।'

मुझे क्या मालूम था कि इस हरामजादी के पेट में इतनी शैतानियत भरी है।'—विलायतो बीबी ने मिस्सी से काले हुए दाँत किटकिटा कर कहा—'बड़ी तकलीफ में थी, दया आ गई; इसीलिए अपने यहाँ रख लिया था। पर, संसार में दया की कीमत कौन समझता है!'

'भला ऐसी औरतों पर कभी दया करनी चाहिए इन लोगों का तो यही पेशा है।'

गङ्गा बहुत देर से खामोश थी। वह सारी टीका टिप्पणी चुपचाप सहन कर रही थी। उसने सिर झुकाए ही कहा—'मे.....'

तिवारी जी उसे जोर से धमकाते हुए बोले—'चुप! अब सफाई देने की जरूरत नहीं। चोरी की चोरी, ऊपर से सीना जोरी!.....'

सुनो, बात करने की जरूरत नहीं—दोनों को ही निकाल बाहर करो।'

विलायतो बीवी बोलीं—'भीमा का क्या कसूर! वह तो बहुत पुराना नौकर है। बचपन से ही हमारे यहां है। सारी बुराइयों की जड़ तो यह कलमुँही है।'

'भीमा के बारे में मैं फिर सोचूँगा। पर, इसे घर में मत रखो, हम बाल-बच्चों वाले आदमी ठहरे, इसे फौरन निकाल दो।—हुक्के को नीचे रखते-रखते तिवारीजी पूजा करने चल दिए।

गङ्गा अपनी तनख्वाह के लिए, थोड़ी देर खड़ी हुई प्रतीक्षा करती रही। विलायतो बीवी रुपये लाने को बगल वाले कमरे में घुसी थी। पर, उनके लौट कर आने के कोई लक्षण दिखाई न दिए।

विलायतो बीबी ने जब तनख्वाह के रुपयों की चर्चा छेड़ी, तो तिवारीजी ने पूजा का मन्त्रोच्चार स्थगित कर जो कुछ कहा, वह शायद गङ्गा को सुनाने के लिये नहीं था। परन्तु गङ्गा ने साफ-साफ सुना—'रुपये किस बात के! झाड़ू मार कर बाहर निकाल दो। क्या यहां रुपयों का पेड़ लगा हुआ है? खड़ी रहने दो, कम्बख्त अपने-आप चली जाएगी।'

गङ्गा अब खड़ी न रह सकी।

कलङ्क, अपमान और दुःख से उसकी आँखें भर आईं। वह उमड़ते हुए आँसुओं के वेग को दबाकर धीरे-धीरे बाहर निकल आई और अपने को पथ के अन्धकार में मिलाकर निःशब्द रो उठी।

गङ्गा चली गई, फिर लौट कर नहीं आई। महीना लेने के लिए भी नहीं आई, और शायद अब कभी आएगी भी नहीं।

गङ्गा भीरु है, दुर्बल है, इसीलिए अपने रुपये लेने के लिए आने का साहस भी उसमें नहीं है। और कोई होती, तो फिर-फिर आती। जब नौकरी ही नहीं रही, तो विलायतो बीबी को खरी-खोटी सुनाने के लिए आती, झगड़ा मचाती और हिसाब कर अपना पूरा-पूरा पावना

ले जाती। परन्तु गङ्गा मारे डर के फिर उस मुहल्ले में दिखाई भी न दी।

गङ्गा का पति रामलाल रेलवे का पैटमैन' है। रेलवे से जो रुपये मिलते हैं, उन से दोनों प्राणियों का खर्च नही चलता। फिर भी लोगों का खयाल है कि रुपये जमा करते हे और उन्होंने काफी रुपये जमा कर भी लिए हैं। इसलिए कि गङ्गा और रामलाल मिलकर कुछ कम नहीं कमाते। गङ्गा काम करती है और रुपये तो लाती ही है; दोनों वक्त का खाना भी साथ ले आती है। कभी-कभी सिर्फ चार-छः रोटियाँ बनानी पड़ती है।

रामलाल कुष्टरोग-ग्रस्त है। अब तक यह बात दबी हुई थी, हाल ही में लोगों को मालूम हो गई है। रामलाल पहले कहार का काम भी करता था। कोढ़ के रोग की बात जाहिर होते ही लोगों ने उससे काम लेना बन्द कर दिया है। उसे देखते ही लोग दूर हट जाते है, काम देना तो दूर रहा।

अब रामलाल टाट बिछा कर, दिन भर अपनी कोठरी के सामने बैठा हुआ हुक्का पीता रहता है। परन्तु गङ्गा के कामों का अन्त नहीं है। थोड़े दिन पहले उसकी नौकरी चली गई है, इससे उसका काम घटा नहीं है, बढ़ा ही है।

वह दिन भर किसी-न-किसी काम में उलझी रहती है। प्रायः देखा जाता है कि उसके क्लान्त और दुखी चेहरे पर पसीने की बूँदे झलझला उठती हैं। उस समय वह भी दीवार का सहारा लेकर आराम से हुक्के का दम लगाती है।

अचानक ट्रेन आने का सिगनल होता है, या ट्रेन निकलने का वक्त आ जाता है। गङ्गा जल्दी से उठती है। फाटक बन्द कर देती है। फाटक के दोनों ओर बहुत-सी बैल-गाड़ियाँ, इक्के और ताँगे खड़े रहते

हैं—फाटक खुलने की प्रतीक्षा में।

कभी-कभी कोई गाडीवान गङ्गा से फाटक खोलने का अनुरोध करता है। परन्तु गङ्गा धीमी आवाज मे कहती है—'नही भाई, नही। वह देखो, ट्रेन आ रही है! अभी नहीं खोल सकती।'

अभी ट्रेन आने में बहुत देर है। जरा खोल दो फौरन निकल जाऊँगा। मुझे बहुत दूर जाना है।'

'नही-नहीं! मे गैर-कानूनी काम नहीं कर सकती। अगर दुर्घटना हो गई, तो तुम भी मरोगे और हमारी भी नौकरी जाएगी—जेल अलग होगी!'

'डरती क्यों हो! अभी ट्रेन आने में काफी वक्त है। बात करते करते निकल जाऊँगा।'

'देर भले ही हो जाए, मे फाटक नहीं खोल सकती। इतने आदमियों की जिन्दगी से खेल नहीं किया जा सकता।'

और गङ्गा गम्भीर चेहरा बना कर सीधी खड़ी हो जाती है। हरी झण्डी या हरी रोशनी दिखाती है। दौड़ती हुई ट्रेन की रोशनी गङ्गा के चेहरे पर पड़ती है। एकाएक चौंकते हुए यात्री पीछे फिर कर देखते है; ट्रेन बहुत दूर निकल जाती है। फिर दिखाई नहीं पड़ती।

गङ्गा की नौकरी छूट जाने से रामलाल जरा भी दुखी नहीं हुआ है। कहता—'अच्छा ही हुआ! हम दो प्राणी है। फिर क्या जरूरत है कि दूसरों की डांट-फटकार सुनें।'

गङ्गा कोई जवाब नही देती। सोचती है कि खर्च कैसे चलेगा? खाने-पहनने का तो कोई ज्यादा खर्च नहीं है; पर, रामलाल की दवादारू में उसे काफी से ज्यादा खर्च करना पड़ता है।

चिकित्सा में कितना खर्च होता है, यह रामलाल को मालूम नहीं; और अगर मालूम भी हो जाए तो वह विश्वास नहीं करेगा।'

रामलाल कुछ संङ्कोच के साथ प्रश्न करता है—'अच्छा, तुम्हारी नौकरी क्यों छूटी? यह नही बताया। क्या झगड़ा हुआ था?'

परन्तु गङ्गा हर रोज इस अप्रिय प्रसङ्ग को टाल देती है। इस बार भी उसने टालने की कोशिश की।

गङ्गा के दुखी चेहरे की तरफ देख कर रामलाल के मन में न जाने क्यों एक प्रकार का सन्देह जाग्रत होता है। वह कहता है—'नहीं बताओगी न ? भला मैंने तुम पर कभी सन्देह किया है—लोगों की बातें मैंने कभी सुनी हैं ? कहो, तुम्हीं कहो !'

गङ्गा फिर भी चुप रहती है और रामलाल उसका हाथ दबाकर कहता है--'मुझे भी नहीं बताओगी ?'

रामलाल की कातरता से गङ्गा का दिल न जाने, कैसा होता है। वह अस्फुट स्वर में कहती है—'तिवारी जी की बीबी ने निकाल दिया।'

'निकाल दिया क्यों ? ऐसा तुमने क्या कुसूर किया था ?'

'तिवारीजी के नौकर भीमा ने मेरा आलिङ्गन करना चाहा था।' शर्म से मानो गङ्गा का सिर मिट्टी में मिल जाना चाहता है।

रामलाल के हाथ से गङ्गा हाथ का छूट जाता है। उसकी पंगु देह मानो कड़ी हो जाती है—उसमें असुरी शक्ति जाग उठती है और दोनों छोटी-छोटी आँखें सांप की आँखों जैसी धक्-धक् जलने लगती है।

गङ्गा को और किसी जगह नौकरी न मिलने से रामलाल बहुत खुश है, सोचता है—चलो, यह भी अच्छा है। गङ्गा हर वक्त उसकी सेवा-सुश्रुषा में लगी रहती है। उसकी आरोग्यता के लिये पूजा पाठ भी किया करती है। ट्रेन आने के वक्त सब काम-काज छोड़ कर कितनी तत्परता से गेट बन्द करने दौड़ती है। हरी झण्डी और हरी रोशनी दिखाती है।

वास्तव में रामलाल बहुत खुश है, इसलिए कि उसे कोई काम नहीं है। अब गङ्गा काम के नाम पर रात को बाहर नहीं जाती—हमेशा उसकी नजरों के सामने रहती है और वह आराम की साँस लेता हुआ सोचता है—यह तो ठीक है।

गङ्गा को भी बुरा नहीं लगता। वह स्वाधीन है। उसे किसी की भी खुशामद नहीं करनी पड़ती—किसी की डाँट-फटकार भी नहीं सुननी पड़ती, न उससे कोई कुछ कहने सुनने वाला ही है।

शान्ति और सुख है! बेकारी के दिनों जैसी सुदीर्घ शान्ति और सुख!

गङ्गा का वक्त बहुत अच्छी तरह कट जाता है। ट्रेन के बाद ट्रेन आती और चली जाती है। उसे दौडती हुई ट्रेनें देखने में बड़ा मजा आता है, जैसे प्रतीत होता है, उनमें मानव जाति के अनोखे व्यक्तित्व सन्निहित हैं। कोई अपने प्रियजनों को छोड़कर जाने की वजह उदासी से ताकता रहता है और उसके दोनों नयन व्याकुल आँसुओं में डूबे रहते हैं। कोई अपने प्रियजनों से मिलने जा रहा है। अनजाने ही उसका चेहरा खुशी से खिला हुआ है। और, दोनों आँखें बार-बार आनन्द से —कौतुहल से चमक उठती हैं।

चलती हुई ट्रेन के यात्रियों की तरफ देखते-देखते गङ्गा का मन न जाने कहाँ खो जाता।

रात के ग्यारह बजे के बाद कोई ट्रेन नहीं आती। कभी-कभी एक-दो मालगाड़ियाँ जरूर निकल जाती हैं। मोटरों तथा और दूसरी गाड़ियों का आना-जाना भी बन्द हो जाता है। पथ में लोगों का चलना भी रुक जाता है। चारों तरफ़ निस्तब्धता छा जाती है—खामोशी फैल जाती है!

इस समय गंगा को पूरा आराम मिलता है। न फाटक बन्द करने की दिक्कत, न चूल्हे-चौके से सिर मारने की झंझट, न रामलाल के बदन में तेल लगाने की उलझन। न लाइन पर ट्रेनों की गड़गड़ाहट, न पथ पर सवारी-गाड़ियों की खड़खड़ाहट—मानों सब कुछ निस्तब्ध, जड़ पंगु और अचल हो जाता है।

रामलाल बगल में ही सोता है। वह मुर्दे की तरह पड़ा रहता है। कभी बीच-बीच में बदन खुजला लेता है। खुजाने से सूखा चमड़ा छिल

जाता है और कभी-कभी विषाक्त रक्त और मवाद बाहर निकल पड़ता है। निस्तब्ध रात्रि में अकेली गंगा को डर मालूम होता है और वह जरा दूर हट जाती है। उसे नीद नहीं आती। वह रोज ही खूब नहीं सो पाती—क्या उसके लिये हर रोज खूब सो सकना सम्भव है ?

तन्द्रातुर गंगा की सचेतन अनुभूतियाँ कभी-कभी रोमांचित हो उठती हैं। शायद उसे स्वप्न ही दिखाई देते है। उसके अचेतन मन में जैसे भास होता है कि ऐसे स्वप्न वह प्रत्येक दिन देखती है।

गंगा रामलाल का हाथ नही हटाती। अचेत गङ्गा नीद में मानों स्वयं को पति देवता के आलिंगन में छोड देती है।

कभी-कभी गंगा सोते-सोते एकाएक अस्फुट स्वर में आर्त्त-नाद कर उठती है। उसके खून के साथ कोढ़ के रोगी का खून मिल गया है। वह विषाक्त खून उसके सारे शरीर मे फैल गया है। उसका सारा शरीर जैसे धीरे-धीरे फूल रहा है—अङ्ग गल गए हैं और नाक, कान गल कर गिर रहे हैं। गङ्गा को मानों विकृत चेहरा स्पष्ट दिखाई देता है—ऐं !·····यह तो गङ्गा नही है—यह तो गङ्गा का चेहरा नहीं है !·····गङ्गा के नाक थी, कान थे और थी उँगलियाँ·····रूप भी था।·····मगर यह कौन है ?·····और इसकी गोद मे यह कुष्ठ-रोगग्रस्त विकलाङ्ग शिशु किसका है ?·····उसका शिशु और गङ्गा आर्त्तनाद कर उठती है।

रामलाल डर कर उठ बैठता है ऐसा कौन सा अपराध किया उसने—स्वप्न ? शायद स्वप्न ही !···रामलाल गंगा के सिर पर पानी के छीटे देता है—हवा करता है। परन्तु गंगा बेहोशी की हालत में काँपती ही रहती है।

बहुत दिन हुए, रामलाल की नौकरी छूट गई है। रामलाल जिंदा है या मर गया—यह कोई नहीं जानता। पाँच-सात वर्ष में बड़े-बड़े

परिवर्तन होगये है। सरकारी नौकर तब्दील होकर चले गये है और उनकी जगह नये आदमी आ गये है। इस जगह के बहुत से आदमी दूसरे मुहल्लों मे जा बसे है और दूसरे मुहल्लों के आदमी यहाँ आ बसे है। जो उन दिनों छोटे थे, वे अब बड़े हो गए है। उनका दृष्टिकोण है, नई विचारधारा है। कोई नौकरी की तलाश मे और कोई नौकरी मिल जाने की वजह—सब चारो ओर बिखर गए है। कितनी ही औरतें विवाह के बाद सुदूर देशो मे चली गयी है और कितनी ही औरतें विवाह के बाद सुदूर देशों से यहाँ आ गई है। इसके बाद कितने मरे, कितने पैदा हुए—यह एक अलग हिसाब है !·····जहाँ इतना बड़ा परिवर्तन हो, वहाँ गगा को खोते कितनी देर लगेगी।

जिनसे गंगा की घनिष्ठता थी, उनका कहना था कि रामलाल की नौकरी छूटते ही गँगा भाग गई। अब जूट-मिल के मजदूरों की बस्ती में रहती है। उसने फिर विवाह किया है या नही, इसका तो पता नही; पर वह रहती किसी मजदूर के साथ ही है। भला कुष्ठ रोगी की पत्नी को मजदूर के अलावा और कौन ग्रहण करेगा।

काफ़ी लम्बे अरसे के बाद स्वास्थ्य प्रदर्शनी का आयोजन हुआ है इसलिए भीड का क्या कहना !

रास्ते के दोनों तरफ बहुत से भिखारी इकट्ठे है। उनका वचन विन्यास विचित्र है और टेकनिक भी अजीब। उनके दुःख और दुर्दशा से करुणा आती है; पर उनके जुल्म से आत्म-रक्षा ही की कोशिश बढ़ती है।

प्रदर्शनी देखने बहुत से आदमी आए है। तिवारीजी भी सपरिवार पधारे है। उनके साथ पूरी एक फ़ौज है—छोटे बड़े मिलाकर कुल चौदह आदमी।

विलायतो बीबी ने रास्ते के एक ओर खड़ होकर कहा—'हम

सब यहीं खड़े हैं, तुम चौदह टिकट खरीद लाओ।.....ओफ कैसी भीड़ है !' और वह आँचल से एक रुपया निकाल कर देते हुए बोली—'यह लो, पर दो आने वापिस लेते आना। खबर से !'

दो आने वापिस लेते आएँगे—यह हिसाब तिवारीजी भी जानते हैं। पर, वह बिना अनुमति के ही कहीं चाट वगैरह में दो आने खर्च न कर दें, इसलिए विलायती बीबी ने उनको पहले से ही चेतावनी दे दी थी।

तिवारीजी बच्चों कच्चों की सेना को विलायती बीबी के जिम्मे छोड़कर टिकट खीदने के लिये आगे बढ़े। परन्तु विलायती बीबी बार-बार पाकेट मारों की चर्चा कर, तिवारी जी को रुपया हाथ में ही रखने की हिदायत देना नहीं भूलीं।

तिवारी जी यहाँ कोई पुण्य कर्म करने नहीं आये थे। जब पीछे पड़े हुए भिखारियों से किसी तरह पिण्ड छुड़ा सके, तो उन्होंने एक को ज़ोर से चपत जमा दिया। बस सब के सब पीछे हट गये।

पास ही एक भिखारिन खड़ी थी। उसने भी भिक्षा के लिए उसी वक्त हाथ फैलाया था; पर तिवारी जी का रुख देखते ही फ़ौरन डरकर हाथ पीछे खीच लिया।

लेकिन तिवारी जी चौंक पड़े। ऐं, गंगा कहारिन भीख माँगती है ? न वह रूप है, न वह यौवन है ! यह कैसा बीभत्स चेहरा है, मानो सारे विश्व का विद्रूप कर रहा है।

और वह रामलाल है। एक काठ के बाक्स में अर्द्धगलित माँस-पिण्ड की तरह पड़ा है। सारा शरीर गल गया है, एक भी उँगली बाकी नहीं बची है, न दोनों आँखों से दिखाई देता है।.....नाक भी बिल्कुल बैठ गई है ! कितना बीभत्स—कितना भयानक दृश्य है !

क्या भीमा के जुल्म की शिकार गंगा यही है ? तिवारीजी कितनी देर तक उसे देखते रहे और देखते-देखते क्या सोचते रहे यह उन्हें याद नहीं। हाँ, वे एकाएक सिहर अवश्य उठे। रुपया उनकी दृढ़ मुट्ठी में

अब भी था। कहीं खो नहीं गया था।

गंगा पीछे हट कर खड़ी होगई। शायद वह तिवारीजी को पहचान नहीं सकी और किसी दूसरे दाता के अनुसन्धान में पीछे हट गई। परंतु तिवारीजी ने आगे बढ़कर रुपया उसकी हथेली पर रख दिया और वह आँखें फाड़-फाड़ कर उनकी ओर देखती रह गई।

तिवारीजी ने एक ठण्डी साँस छोडी। शायद उन्होंने अपने जीवन में आज तक इतना बड़ा दान कभी नही किया था।

फूलों की माला

फूल—उसके चारों ओर कितने फूल हैं।

गुलाब, गेंदा, जूही, चमेली, मोतिया—और भी अनेक प्रकार के देशी-विदेशी फूल हैं। सारे रास्ते में उनकी सुगन्ध महक रही है। चम्पा के अधखिले फूलों की भी कमी नहीं है।

पहले मेनका इन फूलों को बैठे-बैठे देखती रही। फिर लेटे-लेटे। हवा के साथ इन फूलों की खुशबू चारों ओर उड़ रही है, तरह-तरह की सुगंध।

मेनका एक माली की लड़की है। देश के बँटवारे की वजह से उसे इस शहर में आना पड़ा है। जब वह बहुत ज्यादा बीमार हो गई तो एक हॉस्पिटल में दाखिल कर ली गई थी।

जब उसे वहाँ से निकाल दिया गया और वह सड़क पर आकर खड़ी हुई, तब उसकी अवस्था भिखारी से भी ज्यादा खराब थी। भिखारी को भी कुछ-न-कुछ अनुभव होता है, थोड़ी-बहुत सामर्थ्य होती है।

उसके जो सगे-सम्बन्धी थे, वे सब खो चुके थे। जिस फुटपाथ पर से उसने विदा ली थी, वह जगह अब भी खाली पड़ी थी। धुएँ से काली पड़ी हुई सिर्फ दो ईंटें भी वहाँ मौजूद थी, अस्थायी चूल्हे का चिन्ह।

इधर-उधर घूम फिरकर मेनका फूलों के एक बाजार के सामने आकर बैठ गई। उसे यह जगह बहुत पसन्द आई। चारों ओर फूलों का ढेर लगा हुआ है। इतने फूल तो उसने अपने देश में भी कभी नहीं देखे थे।

यहाँ बैठे-बैठे वह भीख माँगेगी। यहाँ कैसे-कैसे विचित्र-विचित्र

लोग आते है। मेनका को तो सिर्फ अपना पेट ही पालना है।

शरीर में ज़रा-सी ताकत आ जाए, बस, मेनका इस भिक्षावृत्ति को छोड़ देगी।

वह फूलों का हार बनाएगी, माला गूँथेगी! सफेद फूलों के गजरे के बीच-बीच में वह लाल फूल लगा देगी।

अपने देश मे चौधरी जमींदार के राधा-गोविन्दजी के लिए तो वह हर रोज माला गूँथती थी। काले पत्थर के देवता सफेद फूलों से अपूर्व बन जाते थे। कभी-कभी एकात में वह देखने गई है, मानो उसे देखकर देवता-दम्पति मुस्करा रहे हों। राधा-गोविन्दजो सिर्फ जमीदार के ही देवता नही है, वे तो उसके हृदय के भी देवता है।

कुछ देर के लिए आँखें, बन्दकर वह जमींदार चौधरी के यहाँ की कल्पना करने लगी। ओह, उसने क्या नहीं देखा, क्या नही सुना। घण्टा-घड़ियाल की आवाज।

ये दूकानदार फूलों की बहुत बेकद्री करते है। अपवित्र हाथों से फूल उठा लेते है। ये लोग इनकी कद्र क्या जानें! माला गूँथना तक तो उन्हें आता नही। एक हाथ में फूलों का गुच्छा भी अलग नहीं पकड़ सकते! किस फूल के बाद कौन-सा लगाना चाहिए, किस प्रकार फूलों को माला में सजाना चाहिए, मेनका यह जानती है।

उसके पुरखे भी माली थे। यह पेशा जैसे उसके खून में मिल गया है। ये दूकानदार क्या उससे माला नही गुँथवाएँगे?

मेनका की जानने की इच्छा हुई कि यहाँ राधा-गोविन्दजी का मन्दिर कहाँ है।

जो लोग फूल खरीदते हैं, उनके साथ एक दिन वह जाएगी, अपने मन के देवता को वह देखेगी। मेनका ने फिर आँखें मूँद ली।

वह बहुत-सी बातें सोच रही थी। और उसने अपने दोनों हाथ सामने की ओर फैला दिए—'बाबू, एक पैसा.....'

उसके कमजोर हाथ पत्ते की तरह काँप रहे थे। सौ आदमियों के

आगे हाथ फैलाने पर उनमें से शायद एक व्यक्ति ही पैसा देता है।

शाम के वक्त मेनका ने देखा कि कुल चार आने ही मिले हैं। इन पैसो से खाने की ऐसी कोई चीज नही खरीदी जा सकती ताकि चूल्हे पर हड़िया न चढ़ानी पड़े।

वह खड़ी हो गई। उसे जिन्दा रहना होगा। पहले जैसी ही शारीरिक शक्ति चाहिए। उसका यौवन अभी खिला है। सिर्फ उसकी दोनों बाहुओं में कुछ शक्ति आ जाए तो सब ठीक हो जाएगा।

अस्पताल के डाक्टर ने कहा था; 'शरीर की पूरी देख-भाल करना सँभलकर रहना तो जल्दी ही एकदम ठीक हो जाओगी।'

मेनका ने मिट्टी की एक छोटी-सी हँड़िया खरीदी और राशन की एक दूकान के सामने जाकर खड़ी हो गई। दूकान बन्द होनेवाली थी।

'कार्ड ?'

'कार्ड तो नहीं है। कल ही तो अस्पताल से.....'

'.....छुट्टी मिली है। नही मिलेगा, भाग यहाँ से।'

'भूखी नही मर जाऊँगी।'

दूकानदार अर्थपूर्ण ढंग से हँसा। एकदम काला और खूब मोटा-ताजा है।

'आप हँसते हैं : यह मेरे जीवन-मरण की समस्या है, और आपको हँसी आ रही है।'

'तुम्हारी बातों पर हँसी आ रही है—बिना कार्ड राशन देने का नियम नही है। जाओ, चली जाओ यहाँ से।'

एक खरीदार भी वहाँ खड़ा था। बोला, 'इतने कठोर मत होइए। नियम तो बहुत है पर आप लोग क्या हमेशा सब नियमों का ही पालन करते है।'

'क्यों साहब, आप कौन होते हैं, जो वकालत कर रहे है ? एक को दूँगा तो दस मेरी छाती पर चढ़ आएँगे—तब ?'

'अभी तो कम-से-कम और कोई नही है। आप चाहें तो थोड़ा-

बहुत दे सकते हैं।'

मेनका का हृदय कृतज्ञता से भर गया, 'अभी दुनिया एकदम वीरान नहीं हुई है, मनुष्य है ?'

'अच्छा, तुम लोगों को मौत भी नहीं आती ? जिधर देखो, उधर ही हाथ पसारे भिखारी खड़े हैं। सुना है कि किसी एक देश में भिखारी नजर आते ही गोली से उड़ा दिया जाता है—खैर, क्यों री, कितने पैसे हैं ?'

'दस पैसे।'

'अरे नत्थू, एक पाव चावल तौल दे। वजन कम मत करना।' कहकर उसने एक हाथ से पैसे लिए और दूसरे हाथ से नत्थू के आगे बटखरा बढ़ा दिया।

मेनका चावल लेकर लौट आई।

उस वक्त तक पूरा अँधेरा नहीं हुआ था लेकिन दूकानों में बत्तियाँ जल गई थीं।

फूलों की सुन्दरता में जैसे चार चाँद और लग गए हैं। हवा से चारों ओर सुगन्ध फैल रही थी। अनेक सुन्दर स्त्री-पुरुष दूकानों पर आ रहे हैं। कैसे अच्छे, रंग-बिरंगे और चटकीले कपड़े पहने हुए हैं। बिजली की रोशनी में कीमती जेवरात चमक रहे हैं।

एक खंभे की आड़ में मेनका खड़ी हो गई। उसे देखकर कहीं कोई घृणा से नाक-भौं न सिकोड़ ले। उससे छू जाने की वजह से किसी के फूल कहीं अपवित्र न हो जाएँ ! यहाँ मेनका नई है। इसीलिए एका-एक मन में उदासी छा जाती है।

लेकिन दूसरे ही क्षण वह उदासी मिट गई।

जब सारे दिन लोगों ने देखा तक कुछ नहीं, और अब इस वक्त इतनी शर्म।

वह खम्भे की आड़ से निकल आई। इस बाजार में वह फटे-पुराने कपड़ों में कैसी लग रही है।

रंगीन सिल्क की साड़ी पहने हुए एक युवती तेजी के साथ मोटर पर चढ़ी। मोटर में बैठे हुए युवक ने पूछा, 'यह क्या ?'

'देखो देखो, फूलों के इस बाजार में यह भूतनी क्यों घूम रही है ?'

'छिः, ऐसी बातें नहीं करते। कौन जाने, किसकी तकदीर मे क्या लिखा है ?'

'आप ठीक कहते है मि० चोपड़ा, मेरी गलती है। उसे बुलाइए, पैसे दूँगी। शायद यह रिफ्यूजी है।

युवक के बुलाने पर मेनका आगे नहीं बढ़ी। मोटर स्टार्ट कर वे चले गए।

फूलों के बाजार में नियमित रूप से खरीद-फरोख्त जारी है। नाना स्थानों से तरह-तरह के फूल आते है और सैकड़ों व्यक्ति खरीद-कर ले जाते हैं—पंजाबी, बंगाली, गुजराती, यहूदी, मारवाड़ी, पारसी लेकिन इन सबकी श्रेणी एक ही है—ये लोग सिर्फ भाग्यवान् ही नही है, ऐश्वर्यवान् भी हैं और विलासिता का तो कहना ही क्या।

मेनका सोचती है, इतनी भिन्न-भिन्न जाति के ये भक्तगण किस देवता की पूजा करते है। वह देव-मन्दिर कहाँ है ? उसके मन में कौतूहल जाग्रत होता है, और फिर उसे अपने राधा-गोविंद के युगल रूप की याद आती है। यहाँ भी कोई ऐसा मंदिर है ? वह किससे पूछे ? उसकी जानने की उत्कट इच्छा होती है।

लेकिन भूख उसे बेचैन कर देती है। पास से गुजरते हुए एक अंधे भिखारी को उसने पुकारा। अंधे की सामर्थ्य और मेनका की दृष्टि-शक्ति दोनों मिलकर काम करेंगी। अंधा राजी हो जाता है।

फुटपाथ पर, 'डस्टबिन' के करीब एक ओर उसकी हँड़िया चढ़ी। बाजार से सड़ी मूलियाँ और बैंगन उठा लाई थी, उनकी सब्जी बनने लगी। चावल बन गए, सब्जी भी तैयार।

'मेनका, मुझे आज खाने में बहुत स्वाद आ रहा है । वाकई, खाना बनाना तो सिर्फ औरतें ही जानती है । आज से हम दोनों का खाना एक साथ बना करेगा ।'

'बहुत अच्छा, मुझे कोई एतराज नहीं । हाँ, पानी का कटोरा तो जरा आगे बढ़ा देना ।'

अंधे के अन्दाज से ही पानी का पात्र मेनका के मुँह के सामने कर दिया । मेनका सारा पानी पी गई । बोली, 'ओफ ! इतनी देर बाद जान-में-जान आई ।'

काफी रात हो चुकी है, मेनका कहती है, 'बस, और थोड़े दिनों की बात है । फिर तो मेरे हाथ में ताकत आ जाएगी । डाक्टर ने कहा हैं, डर की कोई बात नहीं ।'

'लेकिन मेनका, मैं तो जन्मान्ध हूँ, मेरे लिए कोई आशा नहीं ।'

'आशा क्यों छोड़ते हो ? मैं माला गूँथना जानती हूँ, तुम्हें भी सिखा दूँगी ?'

'कैसे, कैसे ?'

'यह फिर बताऊँगी । सिखाते वक्त सब बता दूँगी । अब सोओ । मतलब यह कि अब हम लोगों को भीख नहीं माँगनी पड़ेगी ।

'सच ? भीख नहीं माँगनी पड़ेगी ?'

'हाँ हाँ, अब चुप रहो ।' अन्धे के टाट के टुकड़े पर ही एक कोने में मेनका लेट गई ।

सडक पर मोटर तथा अन्य दूसरी सवारियों का आना-जाना बन्द हो चुका है । उन दोनों ने आँखें मूँद ली ।

लेकिन मेनका को नींद नहीं आई । उसने पूछा, 'तुम यहाँ कितने दिनों से हो ?'

'कितने दिनों से ?—मेरा तो प्रायः सारा जीवन ही इस फुटपाथ पर कटा है ।'

'अच्छा, तब तो तुम बता सकते हो कि इतने फूल कहाँ जाते हैं ?

यहाँ क्या कोई देव-मंदिर है ?'

'देव-मंदिर ?—इस मुहल्ले में !' अन्धा कुछ हँसा। 'अपना देश छोड़कर इस शहर में तुम्हें आए अभी थोड़े ही दिन हुए हैं न—अभी सो जाओ, कुछ दिनों बाद सब जान जाओगी—यहाँ राधा-मंदिरों की कोई कमी नहीं है।'

इसके बाद असली बात जानने के लिए मेनका ने बहुत अनुनय-विनय की लेकिन अन्धा सिर्फ हँसता ही रहा। 'इस बाजार के तीन-चौथाई फूल तो सामने वाली गली में जाते हैं और बाकी एक चौथाई में से कुछ साहब लोगों की पार्टी में जाते हैं और कुछ शौकीन बाबू लोग अपने मकान वगैरह के लिए ले जाते हैं। लेकिन हाँ, यह भी कैसे कह सकता हूँ कि कभी-कभी दो-चार फूल देवता के मंदिर में भी नहीं चढ़ाए जाते होंगे ?'

लेकिन इतना बता देने पर भी मेनका ठीक-ठीक कुछ नहीं समझ सकी पर अन्धे से और ज्यादा खोद-खादकर पूछने का साहस भी नहीं हुआ। आधी रात हो चुकी थी। वह कहीं और कुछ न कह बैठे। मेनका ने वह रात बहुत बेचैनी से काटी।

मेनका की आंखें सुबह देर से खुलीं। जब वह सोकर उठी तो उसे अन्धा नजर नहीं आया। सारे दिन वह उस अन्धे की खोज में घूमती रही लेकिन उसका कोई पता न चला।

फिर शाम को मेनका की हँडिया चूल्हे पर नहीं चढ़ी। आज खाना न सही, वह एक बार राधा-मंदिर की खोज करेगी। देवता के दर्शन होंगे और शायद कुछ प्रसाद भी मिल जाएगा। अपने मन में बसाए हुए राधा-गोविंदजी को मेनका प्रत्यक्ष देखेगी।

वह कुछ दूर आगे बढ़ी। फिर ठहर गई और लौट आई। उसने

अपनी धोती बदली और नल के पानी से हाथ-मुँह धोकर वह पवित्र हो गई।

दिन भर भीख माँगकर उसने जो पैसे इकट्ठे किए थे, उनसे उसने कुछ फूल खरीदे, एक फल भी ले लिया। फटी धोती में से थोड़ा-सा सूत निकालकर बड़ी मुश्किल से दो छोटी-छोटी मालाएँ गूंथीं। सफेद फूलों के बीच दो-चार लाल फूल लगा देने से एक अपूर्व शोभा हो जाती है।

आज बहुत दिनों के बाद वह राधा-गोविंदजी के मंदिर में जा रही है। भूख-प्यास सब कुछ भूल गई है। वह मन-ही-मन मीरा बन गई है।

एक चाय की दुकान।

'यहाँ राधा-मंदिर की कौन सी गली है?'

'राधा-मंदिर की गली?'—उत्तर देने वाले ने एक बार ऊपर से नीचे तक उसे गौर से देखा। 'यही तो सामने वाली गली है,'—यह कहकर उसने एक खास ढंग से अपनी आँखें मटकाईं। उसके सामने रखी हुई चाय ठंडी हो रही थी।

मेनका सीधी उस गली में घुस गई। काफ़ी दूर आगे बढ़ गई। राधा-गोविन्दजी का मंदिर कहाँ है? और कितनी दूर? वह व्याकुल होकर दौड़ने लगी। 'राधा-गोविन्दजी कहाँ हो? मुझे दर्शन दो।'

हवा में उच्छृंखल हँसी गुंजित हो उठी।

एक तेज गंध आ रही थी। मेनका की नाक जैसे भीतर से जल उठी। न जाने किसी ने कहा, 'ओ....हो...ओ, कहाँ जा रही हो?' और फिर पास आकर उसका हाथ पकड़ लिया।

छोड़ो-छोड़ो, मैं राधा-गोविन्दजी के मंदिर में जाऊँगी।'

'गोविंद तो मेरा ही नाम है। लेकिन हाँ, इस वक्त राधा रूठी हुई बैठी है। देखती नहीं, मेरे गले में कितनी मालाएँ हैं। आज रात भर के लिए तुम्हीं मेरी राधा बन जाओ न?'

कंपित हाथ मुड़ गया। मेनका के हाथ की माला शराबी के पैरों

के पास गिर पड़ी।

मेनका की आँखों के सामने बाजार के सारे रंगीन फूल सरसों के पीले फूल बनकर नाचने लगे।

बहुत मुश्किल से और परेशान होकर जब मेनका लौटी तो आते ही उसने जमीन पर शय्या ग्रहण कर ली। उस दिन उसने कुछ भी नहीं खाया। हँडिया कौन चढ़ाएगा? उसके हाथ की गूँथी हुई माला अन्धकार में न जाने कहाँ पड़ी रही। उसकी नाक में नाली की बदबू भर गई।

राधा-गोविन्दजी कहाँ हैं?

अब उसके दिन ऐसे ही कटते हैं, अनाहार और अनिद्रा में। वक्त-बेवक्त वह जो कुछ खा-पीकर पेट भर लेती है, जिंदा रहने के दृष्टिकोण से वह नगण्य है। बीच-बीच में उस अन्धे की याद आते ही उसका मन न जाने कैसा-कैसा हो जाता है। वह क्या अब कभी लौट कर नहीं आएगा?

कुछ दिन बीतते-न-बीतते ही उसकी कमजोरी बढ़ गई। उसने बार-बार निगाहें फैलाकर देखा कि अन्धे के परिचित, परित्यक्त स्थान से कुछ फासले पर तीन-चार हट्टे-कट्टे स्त्री-पुरुष भिखमंगों ने कब्जा कर लिया है।

अन्धे का टाट का टुकड़ा और फुटपाथ की वह थोड़ी-सी जगह भी कहीं छिप न जाए! शाम होते-न-होते ही मेनका वहां जाकर जल्दी से लेट जाती है। फटे हुए उस टाट के टुकड़े की तह करके बहुत यत्न से रख देती है। अगर वह लौटकर आए और अपना टुकड़ा माँगे तो लौटना पड़ेगा।

एक दिन उन भिखारियों में से एक ने उसके मुँह पर ढँके हुए कपड़े को खींचकर देखा—कहीं मर तो नहीं गई?

अगर मर गई होती तो अच्छा था, उसे हटाकर उसकी जगह पर कब्जा कर लिया जाता। खाने के अभाव में मेनका दिन-पर-दिन कम-

जोर होती गई। अब उसके पास कपड़ों की भी बहुत कमी पड़ गई थी। सैकड़ों पैवन्द लगी हुई फटी धोती और कितनी सँभालकर पहनी जा सकती है। उन नए आए हुए भिखारियों की आँखों के सामने वह जैसे बहुत शर्मा जाती है, सिकुड़ जाती है। अब वे उसके पास तो नहीं आते लेकिन दूर से ही इस अच्छी और एकांत जगह के लिए उससे ईर्ष्या और द्वेष करते हैं।

मनका अब भी फूलों की दूकानों की ओर देखती रहती है। शहर के विलासी नर-नारियों के हाव-भाव और रंग-ढंग देख कर हैरान होती है और बीच-बीच में गुलाब तथा जूही के फूलों के बदले उसे सरसों के फूल नजर आते हैं। इस वक्त अगर अन्धा होता तो शायद पानी का पात्र आगे बढ़ा देता।

उसकी दृष्टि क्रमशः धुँधली पड़ने लगी और ऐसा मालूम होने लगा जैसे उसके शरीर में जान न हो।

एक दिन जब मेनका से उठा ही नहीं गया तो उसने मजबूर हो उन नए भिखारियों में से एक भिखारिणी को बुलाकर पानी मांगा। उस भिखारिणी ने फौरन ला दिया।

इन थोड़े से दिनों के भिक्षुक-जीवन में मेनका ने जो कुछ भी इकट्ठा किया था, वह सब उसने उस भिखारिणी को प्रतिदान में दे दिया। हँडिया, दो-चार टूटे-फूटे एनामेल के बर्तन, और भी ऐसी ही कुछ छोटी-मोटी पुरानी चीजें।

'यह क्या बहिन ?'

'ईनाम'—मेनका ने कहा।

खुश होने के बजाय वह भिखारिणी शायद दुखी ही ज्यादा हुई।

अब फूलों की खुशबू उसकी नाक तक नहीं पहुँचती, फिर भी, आँखें बन्द किए-ही-किए वह फूलों की कल्पना करती रहती है। मानो हँस-हँसकर माला गूँथना चाहती है, गजरे बनाती है। अपने देवता

को तो सजाएगी लेकिन आंखें खोलने पर उसे सिर्फ सरसों के फूल ही नजर आते हैं, पीले रंग के छोटे-छोटे सैकड़ों फूल।

अचानक एक दिन अंधा लौट आया। उसने मेनका को अपनी बाहुओं में भर लिया।

'देख मेनका, तेरे लिए मे एक रंगीन धोती लाया हूँ और ये दो-चार मिठाइयां भी, चख !'

आंखें मलकर अपलक दृष्टि से मेनका देखती रहती है। यही क्या उनके राधा-गोविन्दजी है ? उनका जैसा ही काला रंग, वैसी ही निश्चल सकरुण आंखों के दो गड्ढे !

लेकिन उसके हाथ में तो फूलों की माला नहीं है ?

किसका बेटा ?

हरदयाल के मन में सुख नहीं है। सावित्री के मन में शांति नहीं है। उनके कोई संतान नहीं है। इतनी विशाल सम्पत्ति का कौन भोग करेगा ?

वर्षों तक नियमित पूजा-पाठ, देवी-देवताओं की मनौती, दान-ध्यान सब कुछ ही व्यर्थ गया।

चारों ओर ऐश्वर्य का समारोह है, आनन्द के सभी उपकरण हैं, पर किसी भी चीज में, किसी भी बात में उनका मन नहीं लगता। कुछ भी उपभोग नहीं कर पाते।

हारकर, एक दिन उन लोगों ने संतान की आशा छोड़दी।

हरयाल ने कहा,—'किसी लड़के को गोद ले लें ?'

'कौन ऐसी मां होगी जो अपने लाल को किसी दूसरे को दे देगी ?' सावित्री ने कहा।

'एक नहीं, सैंकड़ों हे। लेकिन उनकी तलाश करनी पड़ती है।'

'तो फिर तुम्हीं तलाश करो न ?'—सावित्री ने हाँ में हाँ मिलायी।

लड़के की तलाश में हरदयाल ने चारों ओर अपने आदमी भेजे, नाते-रिश्तेदारों को लिखा। जो कोई भी अच्छा सा लड़का ला देगा उसको पाँच सौ रुपया इनाम मिलेगा।

आदमी लौट आये, लड़का नहीं मिला। कोई भी अपने कलेजे का टुकड़ा और गोद का लाल देने को तैयार नहीं हुआ।

सावित्री ने कहा,—'चलो, हम लोग वृन्दावन चलें।'

हरदयाल ने पूछा, 'और मेरी सम्पत्ति, इसे क्या भूत भोगेंगे ?'

समस्या का कोई समाधान नहीं हुआ :

एक दिन सावित्री ने कहा—'तुम दूसरी शादी कर लो।'

'और तुम ?' हरदयाल ने पूछा।

'मैं भी रहूँगी, मेरे लिए कुछ सोच फिकर न करो।'

'मेरी आयु का भी कुछ पता है ? देखती हो कि बाल सफेद हो गये हैं।'

'हूँ, उम्र क्या ? कहो तो लड़की खोजूँ ?'

जरा बाहर घूम आओ। तुम्हारे सिर के बालों को ठंडी हवा की आवश्यकता है।' हरदयाल उठ खड़ा हुआ।

सावित्री ने उसका हाथ पकड़ लिया, 'तुम क्या समझते हो कि मैं मजाक कर रही हूँ।'

बंगाल में भयानक अकाल पडा।

जमीन—जायदाद घर-बार छोड़ कर हजारों किसान शहरों में चले आये; गाँव में मुट्ठी भर अनाज भी नही है। भूख से लोग चीटियों की तरह मरने लगे हैं। मरे हुओं को फूंकने को भी लोग नही बचे। आकाश में गिद्ध मंडराने लगे।

हरदयाल ने रोज कम से कम पाँच सौ व्यक्तियों को खाना खिलाने का हुक्म दिया। लेकिन पाँच सौ की जगह रोज हजारों आदमियों की भीड़ जुटने लगी। हरदयाल भौचक्का रह गया। उसने लोहे का गेट बन्द कर देने की आज्ञा अपने दरबान को दी।

प्रातःकाल हरदयाल घूमने को निकले, गेट से बाहर पैर रखते ही किसी चीज से टकराये। मैले चिथड़ों में लिपटा एक शिशु पड़ा था। वे बैठ गये—'ऐसे पत्थर दिल मां-बाप भी इस दुनिया में बसते हैं भगवान् !'

फटे-पुराने चिथड़ों को फेंक कर उन्होंने उसको अपनी रेशमी चादर

में लपेट लिया। दौड़ते हुए अन्दर पहुँचे। सावित्री उसी समय पूजा करने बैठ गयी थी। 'अरे ! जरा इधर आना। देख, मैं क्या लाया हूँ।'

शिशु को देखते ही सावित्री चौक उठी।

'किसका है ? कहाँ से लाये हो ?'

वर्षों बाद उन्होंने अपनी पत्नी से कानों के पास कान सटा कर कुछ कहा।

'वह माँ नहीं डायन थी।' सावित्री ने बच्चे को गोद में ले लिया और सेंकने के लिए उतावली हो गयी।

हरदयाल डाक्टर बुलाने बाहर जाने लगे—

'किसी से कहना मत, मैं अकेली क्या करूँगी ? अगर कुछ हो गया तो ?'

प्रश्न का उत्तर बिना दिये आँधी की तरह हरदयाल बाहर चले गये।

सब साफ होगया। मनुष्य की मृत्यु पर अब मनुष्य शोक नहीं मानता।

सावित्री को तो अब दुःख कैसा ? उसे तो हीरा मिल गया है।

नरम-नरम सफेद बिछौने पर लेटा हुआ शिशु हाथ पैर चलाता है। अवाक् हो सावित्री उसे विस्मय से देखती रहती है।

कुछ दिनों बाद शिशु ने उल्टा होना सीखा। यह देख कर सावित्री दौड़ी दौड़ी आई कहीं छाती में दर्द न हो जाय।

दोनों ने शिशु का नाम रखा नीलकान्त।

एक दिन नीलकान्त अपने आप ही न जाने कैसे बिछौने पर बैठ गया ? सावित्री ने तालियाँ बजायीं और हरदयाल को पुकारा, 'ज़रा देखना, अपने बेटे की करतूत देख जाओ।'

अखबार फेंक हरदयाल दौड़ा हुआ आया।

'देखो कैसे मजे से बैठा हुआ है।' सावित्री ने कहा।

'बैठेगा नहीं ?' हरदयाल ने जबाव दिया, 'नौ दस महीने का हो गया न ?'

'अच्छा यह माँ कब कहेगा ?'—सावित्री का दिल धड़कने लगा।

'जब बोलना सीखेगा तब कहेगा ही, तुम्हें तो जैसे अब चैन नहीं पड़ रहा है।'

लज्जा के कारण ढलती उम्र में भी सावित्री का मुँह लाल हो गया।

सुबह टहल कर हरदयाल लौट रहा था। दरवाजे के भीतर पैर रखने वाला ही था कि एक आदमी ने आगे बढ़कर कहा, 'बाबू' कुछ काम मिलेगा ? बहुत दिनों से काम की तालाश में मारा-मारा फिर रहा हूं। कुछ खाया भी नही है।'

हरदयाल ने उसे गौर से देखा। एकदम निम्न श्रेणी का व्यक्ति हो सो बात नहीं है। पूछा, 'तुम क्या काम कर सकते हो ?'

'सब काम कर सकता हूँ, हुजूर, विनय और सौजन्य से वह आदमी जैसे एकदम जमीन पर गिर गया, जैसे माली का काम, गाय को खाना-पानी देना, बाजार से साग-सब्जी लाना, मोटर वगैरह साफ करना इत्यादि सब काम कर सकता हूँ, हुजूर।'

'तुम्हारा नाम क्या है ?'

'जी, वनमाली।'

'रोज सुबह-शाम बच्चे को घुमा-फिरा सकते हो ?'

'घुमाने कहाँ ले जाना होगा, बाबू जी ?'

'यहीं कुछ दूर एक पार्क है।'

'हाँ-हाँ ले जा सकूँगा। कौन-सा बड़ा काम है, हुजूर।'

'चलो, अन्दर आजाओ। पन्द्रह रुपया महीना मिलेगा।'

सावित्री ने सुनकर कहा, 'जानते पहिचानते तो हो नहीं, चट

से एक राह चलने वाले को पकड़ लाये। ऐसे आदमियों का विश्वास क्या ? किसी समय अगर कुछ उल्टा-सीधा कर बैठे तो ?'

'उल्टा-सीधा क्या करेगा ? कोई चोर है ?'

'क्या कहा जा सकता है ? सड़क पार करते समय अगर किसी दिन मोटर से ही टकरा जाय ! मान लो कि बच्चा रो रहा और चुपाये चुप नहीं होता तो एक दो चपत ही जमा बैठा—खैर,...

खैर, वनमाली रख लिया गया।

बच्चे की गाड़ी पर हाथ रखते ही वनमाली काँप उठा। किसी तरह गाड़ी को चलाता हुआ पार्क में पहुँचा। सड़क पर उसने कई चक्कर लगाये। उसने चकित होकर इस बीच सिर्फ दो बार ही शिशु की ओर देखा। वह रुक गया। चारों ओर लोगों की भीड़ है। कोई न कोई उसे जरूर ही देख रहा होगा ? कई बार बच्चे को देखने की इच्छा होते हुए भी उसने मुँह फेर लिया।

शाम को हवा ठंडी चलने लगी। अब फिर वनमाली ने गाड़ी रोकी। बच्चे को दुशाला उढ़ा देने का समय हो गया है। उसने एक बार चारों ओर देखा।

झुक कर उसने तकिया ठीक कर दिया। कुछ देर तक शिशु के सिर पर हाथ फेरता रहा, उसके बालों में अंगुलियां चलाता रहा। कुछ क्षणों तक वनमाली स्तब्ध रहा। सहसा अपना हाथ हटा न सका।

शिशु नीलकान्त आकाश की ओर देख रहा था, या उसकी ओर देख रहा था ! वनमाली ने उसे दुशाला उढ़ा दिया। अँधेरा हो चला है।

अचानक वनमाली ने गाड़ी से नीलकांत को उठाया। और अपनी छाती से लिपटा लिया। आश्चर्य ! शिशु ने न तो किसी प्रकार का असंतोष ही प्रकट किया और न रोया ही।

'ऐं ! यह क्या हो रहा है ?' पीछे से किसी ने पूछा ।

वनमाली चौंका । उसने नीलकान्त को अपनी छाती से और जोर से चिपका लिया ।

'उसे गाड़ी से उठा कर तुम कहाँ ले जा रहे हो ?' उसी व्यक्ति ने फिर प्रश्न पूछा ।

वनमाली ऐसे प्रश्न के लिये तैयार तो था नहीं ? कुछ भी उत्तर न दे सका ।

'क्यों, तुम जवाब क्यों नहीं देते ? यह किसका लड़का है ।'

इस बीच कई और आदमी भी इकट्ठे हो गये ।

'क्यों साहब क्या बात है ।'

'अरे साहब, यह आदमी इस बच्चे को गाड़ी से उठा कर भागने ही वाला था ।'

'है, भागने ही वाला था ? सच ?'

'इसे तो फौरन पुलिस के हवाले कर देना चाहिए, जनाब !'

'पर नौकर कहाँ गया है ?'

'क्या मालूम, कहाँ चला गया ?'

'शायद किसी दाई से बातें करने चला गया हो ?'

वनमाली ने इतनी देर बाद साहस बटोर कर कहा—'आप लोग चिल्ला क्यों रहे हैं ? मैं ही इस बच्चे को घुमाने लाया हूँ और मैं ही लौटा भी ले जाऊँगा । यदि आप लोगों को विश्वास न हो तो चलिये न मेरे साथ ?'

'तुम लाये हो ? अच्छा तो मकान का पता बताना तो जरा ?'

वनमाली नहीं बता सका, चेष्टा भी नहीं की । उसने धीरे से नीलकान्त को गाड़ी में लिटा लिया ।

'अच्छा, इस लड़के के बाप का ही नाम बता दो ?'

वनमाली चौंका । उसके शरीर में जैसे विद्युत के स्पर्श का-सा धक्का लगा उसने ध्यान से प्रश्नकर्ता की ओर देखा ।

'क्यों साहब, देख रहे है न आप लोग ? न तो मकान का ही पता जानता है और न मकान मालिक का नाम जानता है और न बाप का नाम ही मालूम है। अब आप लोग ही बताइये, इसे पुलिस में देना ठीक होगा या नही ?'

भीड़ मे कुछ गुलगपाडा-सा मचा, कुछ आवाजें उठी और गिरी। सब कोई बेचैनी से असली आदमी की प्रतीक्षा कर रहे थे। कोई नही आया और वनमाली ने गाड़ी भीड़ से निकाल कर घर की ओर बढा दी। पार्क से निकल कर सड़क पर आया। पीछे एक छोटी-सी भीड़ भी चली।

मकान के सामने पहुचते ही लोहे का गेट दरबान ने खोल दिया। वनमाली भीतर चला गया।

दहलीज पर बैठी सावित्री प्रतीक्षा कर रही थी। बोली—'क्यों रे, तुझे जरा भी अक्ल नहीं है ? तुझसे कहा नही था कि सूर्यास्त के पहले ही लौट आना ? इतनी सर्दी पड़ रही है, कही ठंड लग जाय तो ?'

घबराकर वनमाली ने उत्तर दिया, 'नही बहू जी, मैंने दुशाला उढ़ा दिया था, टोपा भी बाँध दिया था।'

'फिर भी तुम इतनी देर से न लौटा करो।' नीलकान्त को गोद मे लेकर उसे कई बार चूमा। कहा—'नही, अपना रास्ता देखो।'

'नही बीबी जी, अब कभी भी देर से नही लौटूँगा।'

इसके बाद उसका और कोई काम नही है। कम से कम अभी तक तो और कोई काम स्थिर नही हुआ है। माली की कोठरी के पास ही उसे भी एक छोटी सी कोठरी रहने के लिए मिल गयी थी। ठंडी जमीन पर लेटे-लेटे वह प्रतीक्षा करने लगा कि किसी कारण या और कोई दूसरा काम करने के लिये उसकी बुलाहट हो।

शिशु के रोने की आवाज कान में पहुँचते ही वनमाली उठ बैठा। अभी क्षण भर पहिले ही उसकी आँखे लगी थी। वह कान लगाकर बच्चे का रोना सुनता रहा, वनमाली से न रहा गया, अपनी कोठरी

से बाहर निकल आया और बैठक के सामने जा पहुँचा।

बैठक में शतरंज खेलते खेलते हरदयाल ने पुकारा—'अरे, कोई बाहर है।'

पर्दा हटा कर वनमाली सामने जा खड़ा हुआ।

'ऊपर जाकर देख तो सही कि बच्चा इतना क्यों रो रहा है।'

'अच्छा सरकार!'

एक साथ दो दो सीढ़ियां चढ़ता वनमाली ऊपर पहुंच गया।

सावित्री बहुत परेशान हो रही थी। जब किसी भी तरह बच्चे को चुप न करा सकी तो उसने बहुत ही असहाय भाव से वनमाली की ओर देखा।

'क्यों वनमाली?'

'बाबू पूछते हैं कि बच्चा इतना क्यों रो रहा है?'

'क्या जाने क्यों रो रहा है?'

'जरा मुझे एक बार दीजिये न? जरा इधर-उधर घुमादूँ, शायद चुप हो जाय।' वनमाली ने साहस किया।

'गोद में लिये तो मैं इतनी देर से चक्कर काट रही हूँ।' कुछ खीझ भरे स्वर में सावित्री ने कहा।

'जरा मुझे भी घुमाने दें' उसने हाथ बढ़ा दिए।

बच्चे को लिए वनमाली नीचे चला गया, धीरे-धीरे हाथों में उसे झुलाने लगा। सीढ़ी के पास खड़ी सावित्री देखती रही। रोना बन्द होगया। उसे कम विस्मय नहीं हुआ!

इसके बाद जब कभी नीलकान्त रोता वनमाली की ही पुकार होती। वनमाली की गोद में वह चुप होजाता और सो जाता। घर में वनमाली का अपना स्थान बन गया। वनमाली अगर उसे न खिलाये तो रोये, गोद में लेकर न झुलाये तो नीलकान्त को नींद नहीं आये। यदि बिगड़ जाय तो फिर बिना वनमाली के चुप होने का नहीं।

घुटनों के बल घिसटते-घिसटते नीलकान्त ने चलना सीखा। सीखा

कि सूटकेस, ट्रंक या कुर्सी पर चढ़कर अलगनी पर लटके हुए कपड़े लत्तों को जमीन पर फेंक देना। उसे पुचकारते हुए सावित्री कहती, 'बोल मा-आ'।

नीलकान्त कहता—'माँ-आ-आ'

'देखो, मां कितना साफ कहता है।' सावित्री ने हरदयाल से कहा।

'बाबूजी और भी साफ-साफ कहेगा।' हरदयाल हँसा।

'अच्छा यदि बड़े होकर उसे मालूम हो जाय कि मैं इसकी असली मां नहीं और न तुम बाप, तो ?'—यह कह चुकने के बाद सावित्री ने जैसे इस कथन का गुरुत्व समझा।

'यह इसे मालूम ही कैसे हो सकता है ?'

'मान लो, अगर कोई कह दे।'

'कौन कहेगा ? माली और सिर्फ दो चार ही दाई नौकर इस बात को जानते हैं, और दूसरा तो कोई नहीं जानता है ? देखती रहो, इन सबको एक-एक करके विदा कर दूँगा, कोई भी प्रमाण बचा नहीं रहेगा और वनमाली तो जानता ही नहीं है।'

उस समय नीचे वनमाली पुकार रहा था, 'घूमने कौन चलेगा ? नीलू बाबू चलेंगे क्या ?'

नीलकान्त एकदम उसकी गोद में कूद पड़ा।

उस दिन नीलू को लेने जब वनमाली आया तो वह दरवाजे के पास ठिठक कर खड़ा हो गया। हरदयाल सिखा रहा था—'नीलू बोलो, बाबू जी !'

'बा-आ.....' नीलकान्त सिर्फ इतना ही कह पाया। फिर कहा—'बोल बाबू जी।'

'बा-आ—' नीलकान्त ने फिर कहा।

उसी समय वनमाली भीतर आया। उसे देखते ही नीलकान्त मेज पर से कूद पड़ा। अगर वनमाली फौरन ही न पकड़ लेता तो नीलू को गहरी चोट आ जाती।

हरदयाल ने कहा—'ऐ वनमाली, वक्त बेवक्त कमरे मे मत आया करो। अगर तुम जरा न सँभलते तो बताओ अभी कितनी गहरी चोट लगती।'

तब तक नीलकान्त ने वनमाली का हाथ पकड़ कर खीचना आरभ कर दिया था। वह घूमने जायगा।

आज नीलकान्त का जन्म दिन है। सवेरे से लोगों का आना जाना आरम्भ हो गया है। फाटक पर एक के बाद एक मोटर चली आ रही है। नीलकान्त रेशमी हाफपैंट और कमीज पहिने इधर उधर घूम रहा था। उसके दोनो हाथो में उपहार में मिले हुए खिलौने हैं। कपाल पर चन्दन का टीका और गले में फूलों की माला है।

वनमाली भी उसके इर्द-गिर्द चक्कर काट रहा है पर उसके पास तक पहुंचने का समय ही नहीं मिला। दोपहर को खा-पी चुकने के बाद वनमाली को भी फुर्सत मिली। छुट्टी मिलते ही वह बाहर चला गया और अपनी तनख्वाह से उसने जो कुछ भी बचाया था उससे एक तीन पहिये की साइकिल खरीद लाया। लौटा तो पता चला कि नीलकान्त अभी सो रहा है।

साइकिल के मिलते ही नीलकान्त ने सारे खिलौने फेंक दिए। उपहार देने वालों को यह बहुत बुरा लगा। जलभुन कर रह गये। एक मामूली नौकर ने सबको हरा दिया। उसकी इतनी हिमाकत! बात ही बात में काना-फूसी होने लगी।

एक मामूली नौकर के पास इतने रुपए कहाँ से आए? हितैषियों ने हरदयाल को सावधान किया—'आसार अच्छे नही है। एक दिन सारा माल-मता लेकर भाग जायगा। ऐसे नौकर को तो कभी भी रखना ही नहीं चाहिए।'

हरदयाल की लाई हुई बन्दूक जमीन पर एक ओर पड़ी रही।

दूसरे खिलौने भी पड़े रहे। नीलकांत तो बस साइकिल के पीछे पागल था। आज वह साइकिल पर ही चढ़ कर घूमने गया है।

साईकिल से अचानक नीलकन्त उतर पडा और बोला—'माली, फली खाऊँगा।'

'मूंगफली खाओगे ? अच्छा तो यहाँ घास पर बैठो।'

वनमाली मूंगफली खरीद लाया। 'आओ मेरी गोद में बैठो, घास पर बैठने से कपड़े खराब हो जायेंगे।

नीलकान्त उसकी गोद में बैठ गया। मूँगफली का छिलका तोड़ते हुए वनमाली ने पूछा, 'नीलू बाबू, मेरे साथ चलोगे—दूर बहुत दूर।'

'चलूंगा।'

'वहाँ तुम्हारी मां नही होगी और न बाबूजी ही। वहाँ सिर्फ हम और तुम ही होंगे। तुम्हारी साइकिल भी ले चलेंगे क्यों ? बोलो मेरे साथ चलोगे ? हम लोग यहाँ से भाग जायेंगे—खूब दूर, चलोगें न ? रोओगे तो नही ?'

'नहीं।'

'तो चलोगे।'

'हूँ।'—मूंगफली खाते-खाते नीलकान्त ने कहा।

'चलो, अब घर चलें, शाम हो गयी है।' वनमाली उठ खड़ा हुआ। नहीं तो तुम्हारी मां बकेगी। अच्छा नीलू बेटा मां को छोड़ कर मेरे साथ रह सकोगे ?'

मकान में घुसने के साथ दोनों ओर से आकर दो पुलिस मैनों ने उसे पकड़ लिया। एक ने उसे हथकड़ी पहिना दी।

नीलकान्त बहुत जोर से चीख कर रो उठा। हरदयाल ने उसे गोद में लेते हुए कहा, 'चुप होओ, रोते नही राजा बेटा। नही तो ये लोग तुम्हें भी पकड़ लग।

लेकिन नीलकान्त किसी भी तरह चुप नहीं हुआ। नीलू ने वनमाली की ओर दोनों हाथ फैला दिए।

'मैंने तो कोई भी कसूर नहीं किया है।'—वनमाली ने कहा।

पुलिस इन्सपेक्टर ने उसके गाल पर जोर से एक तमाचा मारते हुए कहा, 'नहीं, तुमने कुछ नहीं किया? अदालत में अपनी सफाई देना। तुम्हारी कोठरी में गहने मिले हैं, चुराये हुए गहने मिले हैं, चुराये हुए गहने। तुम बहुत दिनों से चोरी कर रहे हो। एक दिन लम्बी-सी रकम पर हाथ साफ कर भागने वाले थे। चलो, अब बड़े घर की हवा खाओ।'

'मैंने गहने चुराये हैं? कब?' रुंधे हुए कंठ से वनमाली ने प्रश्न किया। 'गहने·····?'

'महादेव, इसे ले चलो।'

वनमाली को पुलिस ले गयी।

नीलकान्त के चीख-चीख कर रोने से सारा मकान गूँज रहा है। 'चुप होओ बेटा! रोते नहीं। वनमाली चोर था। उसने तुम्हारी माँ के गहने चुराये थे। रोओ नहीं, चलो, मैं तुम्हें मोटर में घुमा लाता हूँ। घूमने ही चलोगे—साइकिल पर? चलोगे?'

'बाबूजी, मैं तो माली के साथ जाऊँगा। माली को बुलाइये, उसके पास जाऊँगा।' नीलकान्त को तो बस यही एक रट थी।

ठीक दो वर्ष बाद एक दिन दोपहर को वनमाली जेल से छूटा। जेल के फाटक से बाहर निकल कर वह सोचने लगा कि इतनी बड़ी दुनिया में वह क्या करे? थकी हुई आँखों से अस्ताचलगामी सूर्य की ओर देखा।

यह कलकत्ते की सड़क है। ठीक पहिले जैसी ही भीड़ है, पहिले जैसा ही चारो ओर शोरगुल है, धक्कमधक्का है। जेल में बेत की

टोकरियाँ बनाते-बनाते उसने सुना था कि अब युद्ध खत्म हो चुका है। अब सब लोगों को दोनों वक्त भरपेट खाना तो मिलेगा ही बल्कि दुःखदर्द और अभाव भी नहीं रहेगा। सुख और शान्ति के साथ लोग रह सकेंगे।

सुख और शान्ति ? वनमाली के हृदय में वेदना की हूक उठी। भीड़ में वह धीरे-धीरे पैर बढ़ाने लगा। किन्तु—किन्तु आज कौन-सी तारीख है ?

'भाई आज क्या तारीख है ?' उसने एक राहगीर से पूछा।

'तारीख ? ठहरो, सोमवार को तेरह थी, मंगल को चौदह, बुध को पंद्रह, सोलह, आज सतरह है, शुक्र है न—सतरह तारीख।'

सतरह तारीख आज नीलकान्त का जन्म दिन है।

हरदयाल सिंह की कोठी के सामने प्रायः चालीस-पचास भिखारी खड़े थे।

'अबे ओ लाटसाहब के बच्चे ! पीछे खड़ा हो न, लाइन में। आगे क्या बढ़ा जा रहा है ?' एक तगड़े से भिखारी ने लाइन से निकाल कर उसे पीछे की ओर धकेल दिया।

'अबे जानता है, हम कब से खड़े हैं, दोपहर के बारह बजे से यहीं डटे हैं।

'और तुझे इतनी जल्दी है कि लाइन तोड़कर आगे बढ़ा जा रहा है।

'यहाँ क्या मिलेगा ?'

'क्या मिलेगा ? ऐं, एक रुपया मिलेगा एक धोती, अपने साथ अगर किसी और को पकड़ लाते तो उसे भी मिलती और एक सेर मिठाई, कभी खाई भी है ?'

बिना कोई जवाब दिये वनमाली लाइन में सबसे पीछे जाकर खड़ा हो गया।

सूर्यास्त कब का हो गया है ! अन्धेरा हो चला है। अब भी वनमाली के आगे पच्चीस-तीस भिखारी खड़े हैं। कहीं वह

भीतर पहुँच सकेगा या नहीं इसमें उसे संदेह ही है। खड़े रहने की अब उसमें शक्ति नहीं है। बीच-बीच में उसकी दृष्टि धुँधली हो जाती है। कुछ देर बैठ कर वह सुस्ता लेता है।

और अन्त में उसका नम्बर आ ही गया। एक चाँदी की कुर्सी पर नीलकान्त बैठा हुआ है। पहिले की अपेक्षा काफी लम्बा होगया है। देखने मे भी ज्यादा आकर्षक मालूम होता है। कपाल पर चन्दन का टीका है, गले में सोने की जंजीर बगल में एक मेज पर धोतियाँ और मिट्टी के कुल्हड़ में मिठाई रखी हुई है। एक नौकर पीछे खड़ा है। वह ही धोती और कुल्हड़ उठा कर नीलकान्त को पकड़ा देता है।

वनमाली ने हाथ पसारा और सीधा खड़ा हो गया; चेहरे पर हल्की-सी मुस्कराहट भी लाया। नीलकान्त ने पहिले उसके हाथ में तो एक रुपया दिया फिर धोती और मिठाई का कुल्हड़।

वैसे ही वनमाली हाथ फैलाये स्तब्ध खड़ा रहा।

चाय की दुकान में

'जी, मैं आल इण्डिया रेडियो से नहीं बोल रहा हूँ। लेकिन इस का यह मतलब नहीं कि बोलने की इच्छा नहीं है : बल्कि मौका नहीं मिला। सच तो यह है कि इस कहानी को मैं सब लोगों को सुनाना चाहता हूँ। सब लोगों को यह मालूम हो जाय कि शिवरतन नामक भला आदमी कैसा नीच प्राणी है। अच्छा क्यों, रेडियो वालों से आपकी जान पहचान है ?

नहीं है ? तो फिर सुनिये। आप इसे कहानी बनाकर किसी पत्र पत्रिका में प्रकाशित करा दें। उससे कुछ न कुछ प्रचार तो जरूर होगा। क्या ख्याल है आपका ? भई, आपकी सूरत तो साहित्यिकों जैसी ही है। ओ, आप बैंक में काम करते हैं। कालेज के दिनों में कविता-वविता तो करते ही होंगे। कभी कुछ नहीं लिखा ? साहित्यिकों जैसी शक्ल और वेश भूषा। प्लाट बहुत अच्छा है, कोशिश करें तो बहुत अच्छी कहानी बन जायगी।.....हाँ, बिना चाय के नहीं। आप जरा जोर से कहिये, नहीं तो इस दुकान का छोकड़ा सुनता ही नहीं : अरे ऐ छोकड़ा, इधर देखो, साहब कब से चाय माँग रहे हैं। बीड़ी-वीड़ी हो तो जरा निकालिये न.....धन्यवाद।

सिविल सप्लाई के शिवरतन मिसिर को पहचानते हैं न ? नहीं जानते, अच्छा ही है। बड़ा नीच आदमी है, साहब। सप्लाई में एक मामूली आदमी ने भी दो-चार साल में ही काफी अच्छी रकम पैदा कर ली। साब, हम लोग एक ही गाँव के रहने वाले हैं। गांव वाले उसके मुँह पर थूकते हैं। इस शिवरतन ने ही मुझे काम दिलाया था। लेकिन इसके लिए उसके यहाँ क्या कम दौड़ धूप करनी पड़ी थी। उस के चाचा आई. सी. एस. हैं। उन्होंने ही उसकी नौकरी लगवायी थी।

नही तो चार-पाँच साल पहले·····

ऊंह। खर, इस बात को छोड़िये। नौकरी मिल गयी, क्लर्क का काम। महीना क्या मिलता था, जाने दीजिए। यही समझ लें सब मिलाकर ऊपर से अच्छी पैदा हो जाती थी। हिसाब की बड़ी बड़ी गलतियों को छोटे-छोटे अक्षरों मे उल्टा सीधा लिखकर ऑडिटर को चकमा देने की तरकीब सीखते ही जैसे लक्ष्मी के आने का दरवाजा खुल गया। इस काम को आप आसान न समझें—यह एक बहुत जबरदस्त कला है। आपकी नजरों मे अगर कोई ऐसी नौकरी हो तो कृपा करके—।

इससे बाद सुनिये। आदमनी होने लगी। अरे वाह, आप नाक-भौ सिकोड़ रहे है। लेकिन तनख्वाह सिर्फ साठ थी और पन्द्रह रुपया मंहगाई भत्ता। तब फिर आप ही सोचिये कि हर महीने अपने घरवालों को दो-सौ रुपया मै कैसे भेज सकता था? इसी तरह मैने अपनी दो बहनों की शादी की। अकाल पड़ा तो आधा गाँव खाली हो गया। लेकिन मेरे घरवालों को एक वक्त भी उपवास करना पड़ा, कोई यह कह सकता है? आज यह कमीज साफ नही, इस्त्री भी नही हुई है। लेकिन तब इसे ही ब्लैक मे साढ़े ग्यारह रुपये मे खरीदना पड़ा था। और भाई,उन दिनों की बदौलत ही तो आज भी टिका हुआ हूँ। छः सात महीने से बेकार हूं, लेकिन फिर भी चला ही रहा हूँ।

देखिये, मै बहुत मुँह फट हूँ, लगी-लिपटी बातें पसन्द नही करता। तब मे आप लोगों का शत्रु था, दुश्मन। आप लोगों की तरह मै भी पढा-लिखा हूँ। नीति के अच्छे-अच्छे उपदेश मुझे भी कंठस्थ है। लेकिन एक महीने नौकरी करने के बाद ही असली चीज को पहचाना। वह असली चीज क्या है, आपको शायद यह बताने की जरूरत नही है। आपने क्या कहा, बैंक में काम करते है?

अकाल पड़ा था। इसलिए मुझे तो कुछ ज्यादा ही फायदा हुआ। देखिये, मैने यह गौर किया था कि जब तक दूसरे लोगों को कमी रही,

तब तक मुझे तो कम से कम से कोई भी तकलीफ कभी नही हुई। अपने और भी दूसरे सहकर्मियों से पूछा था, लेकिन इस तरफ से सबको ही निश्चिन्त पाया। यह मै स्पष्ट कह दूँ, देश के अमगल में ही मेरा मंगल था।.....लड़ाई जारी थी। आह, वे भी कैसे सुख और चैन के दिन थे। साहब, काम तो कुछ था नही—सप्लाई क्या वाकई हमारे हाथ मे थी। एक मन धान से एक सेर चावल निकलता था—हमारे कागज-कलम के हिसाब से, बाकी का हिसाब लगाना बड़े अफसरों का काम था। परमिट बन जाने पर दो-चार दिन देर करके देने पर हमे चार पैसे मिल जाते थे। जब कोई कुछ देने में आनाकानी करता था तो कैंसिल कराने की घुड़की देकर काम बनाया जाता था।

हां, तो मै कह रहा था कि हमने अकाल चाहा था। यानी हम लोग चाहते थे कि अकाल पड़े और लोग भूखों मरें। मै पहले ही कह चुका हूँ कि मै बहुत स्पष्टवादी हूँ। अतः इसमे क्या शक की आप लोगों का दुश्मन था। अतएव, जब पन्द्रह अगस्त को आजादी मिलने की घोषणा हुई तो हम सब लोग काफी घबड़ा गए। सोचा, अब दोनों तरफ से गये। देशी सरकार सब हाल-चाल जानती है। खेती बारी की उन्नति तो करेगी ही, साथ-साथ हम लोगों की इस घूस खोरी को भी खत्म करके ही छोड़ेगी। विदेशी सरकार भी सब जानती समझती थी। लेकिन बड़े साहबों का ख्याल था—तुम्हारा देश है, तुम्हारी जो इच्छा हो सो करो, हमारा क्या जाता है।

साहब, कहते है कि जब भगवान देता है तो छप्पर फाड़कर देता है। आप लोगो की तरह हम भी स्वाधीन हो गए और इसके साथ-साथ ही फौरन डबल प्रमोशन भी मिल गया। मुझसे ठीक ऊपर के दो कर्मचारी, खुरशीद साहब और उनके साले मुहम्मद दोनो पाकिस्तान चले गए। अब मेरी किस्मत चेत उठी। इसके लिए कोशिशें भी कम नहीं करनी पड़ी थी। अपने दूसरे साथियों के खिलाफ बड़े अफसरों के कान भरने पड़े थे, झूठी-सच्ची बातें बनायां थी, खुशामद करनी पड़ी थी।

मतलब यह कि मेरे पद की दुगुनी तरक्की हो गई।

बस, अब क्या था किला फतह कर लिया। आँखों की शर्म या किसी तरह का कोई मुलहिजा में नहीं करता। यह तो शायद आपने भी गौर किया होगा। अब मैं काम सलटाने में लगा। मोटे-मोटे दो चार हाथ मार देने पर सारी जिन्दगी चैन और आराम से कट जायगी।

अरे भाई, क्या बताऊँ, मेरे हाथ में पैसा नही रहता। क्यों नहीं रहता, मालूम नही। मैंने कुछ कम रुपया नहीं कमाया है, लेकिन बचा कुछ भी नहीं! बड़े आदमियों की नकल करने की वजह से वैसी ही आदत भी पड़ गयी है। फिर भी, मेरा ख्याल है कि घुड़दौड़ में ही ज्यादा गया। कहा न, पैसा मुझे काटता है। जरा एक बीड़ी तो निकालिये, साहब ?

हाँ, इसके बाद का हाल सुनाऊँ। अब मैं मोटी-मोटी रकमों पर हाथ साफ करने लगा। लेकिन मोटे-मोटे दांव लगाते-लगाते अन्त में मोटा फायदा ही कर बैठा। मेरे ऊपर एक अफसर था, और उससे ऊपर शिवरतन मिसिर था, जिसने मुझे नौकरी दिलायी थी। लालच और रुपये की चमक में अन्धा होकर उसके हिस्से में भी हाथ मारा।

बात यह हुई कि टालीगज की तापड़िया रईस मिल से ढाई हजार मन चावल निकलने की बात थी। वह चोरों का सरदार पाँच सौ मन देना चाहता था और बाकी दो हजार मन को सड़ा हुआ बता कर खुद पचाना चाहता था। जबरदस्त चोरी थी साहब, सरासर बेईमानी !

मैं सब समझ गया। लेकिन मुझसे रहा नहीं गया। मैं ठीक अपने ऊपर वाले अफसर की परवाह नही करता था। जानता था, जब तक मेरी पीठ पर मिसिर साहब मौजूद हैं, तब तक किसकी परवाह है। उससे दो दिन पहले ही मिसिर साहब ने पन्द्रह दिन की छुट्टी ली थी—और तापड़िया की चिट्ठी ठीक दूसरे दिन आयी थी।

देर करना ठीक नहीं था। इसीलिये दफ्तर से गैरहाजिर होकर मैं दौड़ा-दौड़ा टालीगंज पहुंचा। देखा कि वह तापड़िया भी बहुत चालाक और धूर्त है। मुझे चैक देकर विदा करना चाहता था। मैंने साफ कह दिया, ऐसी कच्ची गोलियों से हम नहीं खेलते। सीधे-सीधे नकदनारायण निकालो। वह बोला, इस वक्त तो कैश नहीं है, कल दे देगा। चलते वक्त कह आया कि दस-दस के सब नोट चाहियें।

दूसरे दिन रुपये लेने फिर पहुँचा। तापड़िया का मकान है तो बहुत बड़ा, लेकिन बहुत गन्दा है। बेटा के पास रुपया है तो क्या हुआ, जरा सफाई-सुथराई और तौर-तरीके से रहना भी सीखता तब बात थी। ऐसा लगता है जैसे उसके मन का मैल और गन्दगी सारे मकान में फैली हुई है। ऊपर के कमरे में ले जाकर उसने एक मैला सा लोहे का सन्दूक खोला और दस-दस के सौ नोट गिनकर मेरे हाथ पर रख दिये। जब नीचे आया तो क्या देखता हूँ कि एक टूटी आराम कुर्सी पर शिवरतन मिसिर साहब स्वयं विराजमान हैं।

अजी साहब, उस वक्त का उनका चेहरा मैं कभी नहीं भूल सकता उनके बदसूरत और चौड़े चेहरे पर जैसे क्रूर और दयाहीन प्रतिहिंसा का भाव फीकी और खिसियानी हंसी के रूप में प्रकट हो रहा था। बोले ओ, तुम हो! मानों मेरी प्रतीक्षा में ही बैठा था। पूछा—यहाँ कैसे आए? इच्छा हुई कि कहूँ—साला, तू यहाँ क्यों आया है? लेकिन मैंने कहा—यहाँ से कुछ चावल लेना था, उसी के लिए—यानी, इन्होंने हिसाब तो ठीक दिया था फिर भी एक बार बैरिफाई करने—।

तापड़िया साला मेरे पीछे खड़ा था। उसकी शक्ल मैं नहीं देख सका। मेरी फूली-फूली जेबों की ओर देखकर मिसिर ने कहा—समझा। अच्छा, नरोत्तमदास पाटोदिया कम्पनी को बिना लाइसेंस के जो कंट्राक्ट दिया गया है, वह तुमने ही दिया था न?

मेरी तो बोलती बन्द हो गई। लेकिन वह बेटा कब मानने वाला था। फिर पूछा इनक्वायरी में क्या हुआ?

क्या जवाब देता। वह साला सब जानता था। उसका हिस्सा भी उसे दे दिया था। समझ गया, अब मेरी नौकरी की खैर नहीं। शाम दफ्तर से छुट्टी होते ही सीधा उसके मकान पर पहुँचा। प्रायः दस-पन्द्रह मिनट बाद वह मिलने आया।

नोटों का बंडल उसके सामने रखते ही वह जोर से ठहाका मारकर हंस पड़ा। हसते हुये ही उसने पूछा—यह किस बात का? लेकिन उंगलियां नोटों को गिनने में लगी हुई थीं।

मै चुपचाप खड़ा रहा। एकाएक मिसिर चीख उठा—'यह क्या, और पांच सौ?'

मै अचम्भे में आ गया। कहा, 'और तो उसने नहीं दिये।'

वह बोला, 'हूं।'

जनाब मुझे यह समझते देर न लगी कि मेरी बात पर उसे विश्वास नहीं हुआ है। और, विश्वास करता भी कैसे? इन सब कामों में कोई भी किसी दूसरे का विश्वास नहीं करता। वह बोला, तुम्हारे जाने से पहले ही तापडिया से मेरी सब बातें पक्की हो चुकी थीं। फिर तुम्हें वहां जाने की क्या जरूरत थी? ज्यादा चालाक और होशियार बनने की कोशिश मत करो। अच्छा, अब तुम जाओ।

अरे साहब, मैंने उसे समझाने-बुझाने और खुश करने की हरचन्द कोशिश की। लेकिन कुछ नहीं हुआ। वह साला मुझसे ज्यादा तापडिया का विश्वास करता था। जब मै उसके यहां से अपमानित और तिरस्कृत हो लौटा तब दुःख और क्रोध से मेरा खून खौल रहा था।

एक दम फौरन ही कुछ नहीं हुआ। लेकिन छः महीने पहले और लोगों के साथ साथ रिट्रेन्चमैट मे मेरी भी नौकरी चली गयी। मिसिर साले की बहुत खुशामद की, आरजू-मिन्नतें की, यानी हर तरह से उसे संतुष्ट करने की चेष्टा की। लेकिन साहब, उस दिन के बाद से उस दिन के बाद से उस बेइमान ने मुझसे सीधे बात ही न की। नौकरी छूट जाने के बाद भी उसके यहां तीन बार गया, यह कहने में मुझे कोई

संकोच या शर्म नहीं है। लेकिन उसका एक ही जवाब था। यानी नहीं ! जानवरों में भी थोड़ा बहुत आत्मसम्मान होता ही है। फिर मैं ही उसके सामने कितनी बार नाक रगड़ता ? आप ही कहिये न ?

क्यों, आप यह कहानी छपा देंगे न। उस साले को लोग पहचान जाय ! लेकिन देखिये, उसमें मेरा नाम मत दीजियेगा।

अरे भैया, बड़े आराम की नौकरी थी। अगर फिर किसी तरह मिल जाय तो क्या कहना है। 'आजादी,' आजादी तो आप लोग बहुत चिल्लाते हैं, लेकिन खाने-पीने की चीजों की कमी और जनता के कष्ट दूर होने के कुछ आसार नजर आते हैं ? जब तक शिवरतन और उस जैसे आदमी सरकारी नौकर हैं, तब तक तो खाद्य संकट क्या कोई भी तकलीफ दूर नहीं होगी। हाय, मेरी नौकरी फिजूल ही गयी।

क्यों साहब, आपको कहानी का यह प्लाट कैसा लगा ? एक काम करिये। इसमें थोड़ा बहुत प्रेम-व्रेम मिला दीजिये। मेरे साथ आफिस की एक लेडी टाइपिस्ट का विवाह करा दीजिए। फिर बताइये कि मेरा चरित्र खराब है। इस कारण दिन ब दिन दाम्पत्य कलह बढ़ता ही जाता है। अन्त में मेरी नौकरी छूटती है और उसके साथ-साथ ही मेरी पत्नी भी मुझे छोड़कर चली जाती है।

इसमें कोई बहुत ज्यादा तो झूठ नहीं होगी। थोड़ी-बहुत झूठ तो लिखनी ही पड़ती है, अपने मन से बातें बनानी पड़ती हैं—क्यों ?··· देखिये न, अब मेरी घरवाली वाकई मुझे एक पैसा नहीं देती।

अच्छा साहब, जरा एक बीड़ी और निकालिये। हाँ, चाय के पैसे तो आप दे रहे हैं न ? आप यह कहानी जरूर लिखें—साला शिवरतन मिसिर—और अगर कहीं नौकरी-वौकरी हो तो मेरा जरूर ख्याल रखें, भूलें नहीं।·····अच्छा, तो अब मैं जाता हूँ।

अंधेरी गली

रमजान को आज महीना मिला है। मिले हैं अट्ठाईस रुपये और साढे चार आने।

दो दिन का वेतन कट गया है। सकीना की बीमारी की वजह से वह दो दिन काम पर नहीं आ सका था।

वैसे रमजान जल्दी नागा नहीं करता। अगर नागा करेगा तो फिर खायगा क्या, इसी कारण।

यह जो कई रुपये कम हो गये, इनकी कमी को वह कैसे पूरा करे? जरा मामूली-सी तबियत खराब होने पर काम से गैर हाजिर हो जाना उसे नही सुहाता। उन्हें, जो रोज कुआँ खोद कर पानी पीते हैं—और वह पानी भी भरपेट नहीं मिलता।

आज महीना मिला है। नया महीना शुरू हुए सात दिन बीत गये। सात दिन की तनख्वाह अपने हाथ में रख कर उन लोगों का महीना दिया जाता है। क्या जाने, अगर उन लोगों को पहली तारीख को ही महीना दे दिया जाया करे, तो फिर वे लोग दूसरे दिन काम पर आवें या नहीं। क्या ठीक है कि किसी अन्य कारखाने में ज्यादा पैसों के लालच में न चले जायँ?

रमजान को हँसी आती है। इस देश में भला अशिक्षित कुली-मजदूरों की कमी हो सकती है?

नहीं। महीना पाकर भी आज रमजान का मन खुशी से नहीं खिला। इन थोड़े से रुपयों से क्या होगा? महीने भर का खर्च कैसे चलेगा? पिछले महीने का उधार चुकाते-चुकाते ही सारी रकम खत्म हो जायगी।

अपने इन विचारों में उलझा हुआ रमजान आगे बढ़ा जा रहा था।

'अरे ओ, रमजान भाई !'

रमजान ने आवाज नहीं सुनी। वह तो अपने विचार में ही खोया हुआ चला जा रहा था।

'क्यों रमजान मियां, सुनाई कम पड़ता है ?'

इस बार आवाज सुनते ही रमजान ने सिर घुमाकर देखा। अब्दुल बुला रहा है। अब्दुल तथा उसके और कई साथी वहाँ इकट्ठे हैं। सब उसके दोस्त हैं, एक ही कारखाने में काम करते हैं।

अपने ही विचारों में रमजान इतना डूबा हुआ था कि वह कहाँ जा रहा है, किस ओर—इसका उसे कुछ होश ही न था। अन्यमनस्क भाव से न जाने कब वह इस तरफ आ गया था।

सामने देशी शराब की दुकान है। गफूर मियाँ का ठेका है। मशहूर अड्डा है। हर रोज शाम को लोग यहाँ इकट्ठे होते हैं। खूब पीते हैं और दिल की बातें करते हैं। मन और शरीर का बोझ हलका कर लेते हैं।

इतनी बड़ी कुली लाइन के बीच सिर्फ वही एक दूकान है। अतः इस ठेके की जितनी पूछ है, आमदनी भी उतनी ही है। यही वजह है कि इस कुली लाईन का असली मालिक गफूर मियाँ है।

लोगों को बुला-बुलाकर शराब पिलता है और खुद भी हमेशा नशे में चूर रहता है। शराब के साथ-साथ उसने साकी का भी इन्तजाम कर रखा है। इसलिये दोनों हाथ चाँदी है। अभी कुछ दिन पहिले ही उसने एक तिमंज़िला पक्का मकान बनवाया है। बोलचाल में मीठा आदमी है और हाथ भी काफी खर्चीला है। महीने के अन्त में शराब उधार भी दे देता है। वक्त पड़ने पर अपने ग्राहकों को दस-पाँच रुपये उधार भी दे देता है। इसलिये सब लोग एकमत हैं कि गफूर मियां बड़ा अच्छा आदमी है।

इस बीच दूकान के सामने रमजान जा पहुंचा था—'अरे आओ, भीतर आओ मियाँ, बाहर ही क्यों खड़े हो ?'

'नहीं भाई, आज नहीं, जरा जल्दी में हूँ।' अनिच्छा पूर्वक रमजान ने जवाब दिया।

नहीं, आज वह शराब नहीं पियेगा। इच्छा होते हुए भी नहीं पियेगा। एक तो पहले ही उसे सवा दो रुपये कम मिले हैं। दूसरे, सकीना अभी भी बहुत कमजोर। कुछ दिनों तक उसे दूध और फल खिलाना ही पड़ेगा: नहीं तो वह जिन्दा नहीं रहेगी। वह बेहद कमजोर हो गयी है। मर जायगी।

'क्यों, क्या बात है ?' अब्दुल ने पूछा। उसके प्रश्न में आश्चर्य का भाव है। फिर, ताज्जुब होने की बात भी है। जिस दिन महीना मिलता है, उस दिन वह हमेशा शराब पीता है।

सर्फ एक दिन ही वह अपने याद दोस्तों के साथ बैठ कर हँसी-मजाक करता है, गम गलत कर लेता है। बीच-बीच में गम-गलत न करने पर मिजाज तो बिगड़ जाता है।

पर जिस व्यक्ति की आमदनी तीस रुपये हो, वह हर रोज कैसे मन बहला सकता है ? भरपेट खाने लायक तो पैसे मिलते नहीं, फिर भला यह शौक कैसे पूरा हो ?

लेकिन तो भी, महीना मिलने वाले दिन यहाँ आकर थोड़ी-सी ठर्रा चढ़ा ही जाता है। बस, सिर्फ इस एक दिन ही वह पीता है।

सकीना को यह मालूम है। शुरू-शुरू में तो वह बहुत नाराज हुई थी, विरोध किया था, बहुत रोई-धोई थी। कहा था—'शराब के नशे में चूर हो अगर अब कभी तुम आओगे तो उसी दिन मैं फाँसी लगा लूँगी।'

लेकिन अब वह भी मना नहीं करती, नाराज नहीं होती। समझाने-बुझाने पर वह सब समझ गयी है, मान गयी है। और फिर, थोड़ी सी शराब पीने पर नुकसान ही क्या होता है ? और वह तो शराब के

नशे में पागल नहीं होता, अपनी सुध-बुध नहीं खो बैठता है। नशे में चूर होने के लिये वह पीता भी नहीं है।

पीता है, क्योंकि न जाने क्यों पीने की इच्छा होती है। पीने से मन मे एक स्फूर्ति आ जाती है। हाथ-पैरों मे एक नयी शक्ति पैदा होती है। खून में एक नया जोश आ जाता है।

सकीना भी अब यह जान गयी है, स्वीकार भी करती है। जान गयी है तभी तो उसने पिछले महीने उसे जबरदस्ती शराब पीने भेजा था। जरा मज़ाक करते हुए रमजान ने कहा था—'मैंने शराब छोड़ दी।'

'क्यों हुजूर ? ऐसी नाराजगी क्यों ?'

'अपनी बेगम का मन रखने के लिए।'

और उस दिन इस बात पर काफी हँसी-मजाक हुआ था। दोनों में अपने मन की गाँठें खोली थी।

सकीना ने फिर जोर देते हुए ही कहा था—'सच कहती हूँ, तुम जाकर पी आओ।'

'आज क्या बात है, जो तुम इतनी खुशामद कर रही हो ? पहले तो रात-रात भर रोती रहती थी।'

जरा आखें मटकाते हुए सकीना ने जवाब दिया—'उस वक्त ही तुमने मेरी कौन-सी बात रखी थी।'

'इसीलिए तो आज नहीं जा रहा हूँ।'

'लेकिन तुम्हें तो आदत पड़ गयी है। नहीं पियोगे तो आंखें जलेगी, सारे बदन मे दर्द होगा।

और सच पूछो तो उस दिन सकीना ने जबरदस्ती ही उसे पीने को भेजा था। उसका खयाल था भी सही। औरत का दिल है न। वाकई, उसे शराब की लत पड़ गयी है।

सकीना बड़ी अच्छी बीवी है। उसके सब दुःख-दर्द समझती है। रात-दिन उसकी कितनी सेवा करती है ! उसके प्रति रमजान का दिल

प्यार से भर उठा। आज कल वह कितनी कमजोर हो गयी है। ज्यादा चल-फिर भी नहीं सकती। चार कदम चलने पर हाँफने लगती है। हाथ-पैर पतली लकड़ी की तरह हो गये हैं और सारा शरीर सूख कर कांटा हो गया है। इस बार बच्चा क्या पैदा हुआ कि सकीना को एकदम खत्म ही कर गया। खत्म होने में कुछ भी बाकी नहीं बचा था। बच्चा भी मरा हुआ पैदा हुआ।

खुदा की दया से सकीना बच गयी। सकीना अगर मर जाती तो वह फिर दो-तीन बच्चों का पालन पोषण कैसे करता। खुदा की मेहरबानी से जब सकीना बच ही गयी है तो खिला-पिलाकर उसकी सेहत ठीक करना उसका पहला फर्ज है। यह उसकी जिम्मेदारी है, इसे पूरा करना चाहिये। इसलिये इस दफा वह एक बूँद भी शराब नहीं पियेगा इन दो-तीन रुपयों से वह कम से कम चार-पाँच दिन तक सकीना को दूध तो पिला ही सकता है।

'नहीं यार, मुझे जाना है।'

'क्यों यार, जाना तो सबको है। यह भी क्या कि अभी आये और अभी चल दिये ?'

'और करूँ भी क्या ? वैसे ही रुपये कम पड़ गये हैं।'

'अबे, आज ही तो महीना मिला है।'

'आधी तनख्वाह तो घर पहुँचने के पहले ही खत्म हो चुकी है, पिछले महीने का उधार चुकाते-चुकाते।'

'अरे तो घबड़ाता क्यों है ? यह मुसीबतें और आफतें तो सबके साथ लगी हुई हैं। अच्छा ले, आज मैं अपनी तरफ से पिलाता हूं, तू जरा आराम से बैठ तो सही।'

रमजान ने कुछ संकोच किया। आज उसका पक्का इरादा था कि शराब नहीं पियेगा। इस महीने वह एक पैसा भी शराब में नहीं उठा सकता। वैसे ही रुपये कम हैं और फिर कितने जरूरी काम करने हैं।

लेकिन अब्दुल ने उसे नहीं छोड़ा। 'अबे पैसे की फिक्र क्यों करता है ?'

अब गफूर मियाँ ने भी उसे बुलाया, 'वाह यार, तुम भी कैसी बातें करते हो। पैसे की क्या चिन्ता, अगले महीने दे देना। तुम्हें कभी उधार देने से इन्कार किया है ? अरे भैया, इसे तो तुम अपनी दूकान समझो।'

अब हार कर रमजान को दूकान के भीतर जाकर बैठना ही पड़ा बातचीत के दौरान मे उसने शराब का एक ग्लास चढा लिया।

शराब पीते-पीते रमजान सोचता है: वह क्यों नही पियेगा ? गरीबों के यहाँ दुख-दर्द तो हमेशा लगे ही रहते है। मगर मुसीबतों का खयाल किया जायगा तो फिर कभी भी पीने का मौका नहीं मिलेगा। और यह तो सिर्फ पीना ही नही है। उसके लिये यह जरूरी है। बिना शराब पिये उसका मन प्रफुल्लित नहीं होता, वह मरा-मरा सा निर्जीव रहता है। किसी काम-काज में मन नही लगता। यह एक ग्लास शराब। एक स्फूर्ति। महीने में सिर्फ एक दिन, एक रुपया। नहीं उसने अच्छा ही किया। अगर वह एक ग्लास शराब नही पीता तो आज सारी रात उसे नीद नही आती।

वह बहुत खुश हो गया। बहुत देर तक बैठा-बैठा गप्पें लड़ता रहा चलते वक्त गफूर मियाँ को पैसे दिये।

'अगर कुछ दिक्कत हो तो भले ही आज रहने दो। फिर दे देना।' गफूर मियाँ ने कुछ सहानुभूति के स्वर में कहा।

'अरे भाई मुसीबतें तो हमेशा ही लगी रहती हैं। आज हाथ में है तो देता ही चलूँ।'

दूकान से नीचे उतर ही रहा था कि उसी वक्त मकबूल से आमना-सामना हो गया। मकबूल दूकान के भीतर घुस रहा था।

रमजान चाहता था कि उसकी नजर बचाकर निकल जाय, क्योंकि वह मकबूल का कर्जदार है। छः महीने हो गए कि उसने मकबूल से

पांच रुपए उधार लिए थे आज दूंगा, कल दूंगा करते-करते अब तक छः महीने निकल चुके हैं। पर रुपए नहीं चुका सका और दे भी कहां से ? किसी भी महीने तो बचते नहीं। लेकिन बचते हैं या नहीं, मकबूल यह क्यों सुनने लगा। उससे जब कर्ज लिया तो चुकाना ही पड़ेगा और अगर वह रुपए नहीं चुकायेगा तो मार-पीट कर वसूल किये जायेंगे। उसे तो हर हालत में चुकाने ही पड़ेंगे।

बल्कि मकबूल अच्छा आदमी है। पहले दो-तीन महीने सिर्फ एक बार तकाजा किया था। इसके बाद उसने जरा भी कड़ी-कड़ी बातें न सुनाई थी। कहा था—'अब दे दो भाई। इस समय मेरा हाथ भी बहुत तंग है।'

तंग ! तंग तो सभी के हाथ हैं। रमजान ने अब तक न जाने कितने वायदे किये होंगे। लेकिन अपना वादा वह कभी पूरा नहीं कर सका। इस तरह छः महीने बीत गये। पिछले महीने मकबूल ने उसके घर पर जाकर उसे काफी जली-कटी बातें सुनायी थीं। उस दिन फिर उसने नया वादा किया था—महीना मिलते ही सबसे पहले उसे देगा। सकीना ने भी जिद पकड़ ली—हम भले ही भूखों मरें पर उधार चुका दो।

अब रमजान को पाँच रुपये देने ही पड़ेंगे। अब इस वक्त टाल-मटोल करने का कोई उपाय नहीं है। फिर मकबूल ने उसे जरूरत के वक्त रुपये दिए थे। अब उसकी जरूरत के वक्त रुपये न देना बहुत बुरी बात होगी। इस वक्त चुका देने पर भविष्य में फिर माँग सकता है।

मकबूल ने और कोई दूसरी बात नहीं की रमजान से चार आँखें होते ही उसने फौरन अपना हाथ फैला दिया—'दे, रुपया दे। आज बिना लिए मैं नहीं छोड़ूंगा।'

रमजान ने जवाब दिया—'हां, हां, मैं वादा खिलाफी क्यों करूँगा। अरे भाई, इस बार तुम्हें देना है—यह तो मैंने पहले ही सोच

लिया था।' उसने ऐसे ढंग से कहा जैसे वह स्वयं ही रुपए देने आने वाला था। पाँच रुपये का एक नोट उसने मकबूल के हाथ पर रख दिया, और फिर नीचे उतर आया।

अब सिर्फ पंद्रह रुपये बचे हैं। सात रुपये तो क्लर्क बाबू को देने पड़े थे। सकीना की बीमारी के वक्त उनसे बीस रुपए उधार लिये थे। सकीना की नाक और कान को नंगा कर उसने तेरह रुपये पहले चुका दिये थे। चांदी की चीजों का और मिलता भी क्या? और बाकी सात रुपये उन्होंने आज ले लिए।

उसने अपनी इच्छा से रुपये नही दिये थे। महीने से ही रुपये काट लिये थे। उसने बहुत आरजू मिन्नत की 'कम से कम दो रुपये तो इस महीने छोड़ दीजिये। इस महीने पाच ले लीजिये और अगले महीने दो काट लीजियेगा।' क्लर्क बाबू ने एक नहीं सुनी। उन्हें खुद बहुत जरूरत थी।

पंद्रह रुपये। सकीना के पास धोती नहीं है। बच्चे भी कपड़े के अभाव में नंगे घूमते-फिरते है। आने-जाने में ट्राम का किराया ही पाँच रुपया लग जाता है।

वह क्या करे! यह महीना कैसे कटे!

एक अजीब निराशा से उसका मन भर गया, विषाद और अंधकार छा गया। राशन लाने के लिए ही हर हफ्ते तीन रुपये चाहिये।

वह रो पड़ा। उसकी अक्ल काम नहीं करती। अंधेरे में उसे कोई राह नजर नही आती।

रात हो गयी है। चारों ओर अंधकार ही अंधकार है।

उस अंधेरी गली के पथ पर वह लड़खड़ाते पैरों से आगे बढ़ने लगा।

पहला पाप

माथे पर हाथ रखे हुए रामेश्वर बाबू विचार मग्न हैं। उनके सामने कागज के दो तीन टुकड़े और एक छोटी-सी पेंसिल पड़ी हुई है। उन्होंने कई बार हिसाब लगाया है, कई दफा काटा-कूटी की है, लेकिन फिर भी मानो उनकी इच्छानुसार हिसाब नहीं होता। चटाई पर पैर पसारे बैठी हुई उनकी पत्नी रम्भा उन्हें एकटक देख रही है। आँखों में नींद भरी है। बीच-बीच में ऊँघ भी जाती हैं और फौरन ही अपने पति की ओर देखती है।

'क्यों जी, तुम्हारा हिसाब हुआ ?'

'कहाँ हुआ ?' एक दीर्घ श्वास छोड़ते हुए रामेश्वर बाबू ने कहा।

'नहीं हुआ,' रम्भा उठ खड़ी हुई और चटाई लपेटते हुए बोली, 'तो अब बन्द करो। तीन पैसे का हिसाब करने के लिए चार पैसे की बिजली खर्च करने की कोई जरूरत नहीं।'

रामेश्वर बाबू चिढ़ गये—'बिजली खर्च होती है, तो मेरा क्या जाता है ? प्रत्येक बल्ब के लिए क्या मकान-मालिक तीन रुपये नहीं ले लेता ? उसका बहुत ख्याल किया है, पर अब और नहीं करूँगा। हर रोज रात को बारह बजे तक जरूर बिजली जलाऊँगा।'

कागज पेंसिल उठाकर रख दी और पलंग पर आ बैठे।

अच्छी तरह अपने पैर पोंछते हुए रम्भा ने जवाब दिया—'और जब वह बिजली की लाइन काट देगा।, तब ?'

कोई जवाब नहीं मिला। रंभा मन ही मन हँसी।

दोनों बच्चों को पास-पास नहीं सुलाया जा सकता। सोते-सोते अगर एक ने दूसरे के लात मार दी, तो फिर रोना शुरू हो जाता है। रोते भी हैं, तो इतनी जोर से कि सारा मुहल्ला जग जाये। हार कर

माँ उठती है और छोटे लड़के को गोद में लेकर चुप कराती है, लड़की को बहला-फुसलाकर और मिठाई देने का वादा कर शांत करती है। किसी-किसी दिन अपने दुमंजिले के कमरे से ही मकान मालिक चिल्ला उठता है—'क्यों साहब, क्या आपने मेरे मकान में ही नाटक कम्पनी खोल रखी है ?'

सब कुछ सहन किया जा सकता है, लेकिन यह व्यंग सहन नहीं होता। इसीलिये पति-पत्नी ने ठीक किया है कि एक-एक बच्चा उन दोनों के पास सोयेगा : ठीक इसी हिसाब से रम्भा अपनी जगह पर लेट गयी।

'समझीं रम्भा—।'

'क्या ?' वे अभी तक सोये नहीं हैं, अब भी सोच रहे हैं ?

'बचपन में यही सोचा करता था कि दीवाली कब आयेगी। लेकिन अब क्या सोचता हूँ, जानती हो ?'

'या ?'

'दिवाली क्यों होती है ?' कह कर उन्होंने फिर एक लम्बी सांस छोड़ी और करवट बदल कर सो गये।

वे एक बहुत बड़े कन्ट्रैक्टर की फर्म में काम करते हैं। आज पन्द्रह साल से काम कर रहे हैं। धीरे-धीरे वेतन में तरक्की होते हुए आज जो महीना मिलता है, उससे किसी तरह दोनों वक्त की रोटियाँ चल जाती हैं। लेकिन रोटियों के अलावा और कोई दूसरी जरूरत पूरी नहीं होती।

आज भी वैसे ही माथा चकरा गया था। दीवाली आ रही है। अपने लिए भले ही कुछ न हो, लेकिन बच्चों के लिए एक दो नये कपड़े चाहिये हीं। बच्चों की मां के लिए भी एक धोती चाहिये। साल भर से वे टालते आ रहे हैं, पर अब एक साथ खरीदना भी असम्भव है। आजकल कपड़े के दामों का क्या पूछना ? दाम सुन कर तो बिजली के करेंट की तरह शाक लगता है।

फिर, इनश्योरेंस का प्रीमियम भी इस महीने में ही देना पड़ेगा। इन सब बातों को सोच कर ही वे हिसाब लगाने बैठे थे। गृहस्थी के चक्र को चालू रखते हुए यदि कोई उपाय निकाला जा सके। लेकिन फेल हो गये, हिसाब के सामने हार गये।

रामेश्वर बाबू सोचते हैं—'हाँ, हिसाब करना तो जगदीश जानता है, उनकी कम्पनी का एकाउंटेंट। इस साल कहाँ तो लाखों का फायदा हुआ, लेकिन उसने मालिक के हुक्म से ऐसा तलपट बनाया कि मुनाफा एकदम गायब हो गया। जैसे कम्पनी को कुछ फायदा ही नहीं हुआ। कैसा अजीब आदमी है! तलपट बनाते वक्त उसने इस बात का जरा भी ख्याल नहीं किया कि उसकी कलम की जरा-सी कारगुजारी से इतने कर्मचारियों का सालाना बोनस एकदम मारा जायगा। हां, उसे तो इनाम मिल गया। उसने भी सोचा होगा कि मुझे तो मिल ही गया, दूसरों को मिले या न मिले।

ये सब बातें सोचते-सोचते उन्हें नींद आ गयी। नींद अच्छी है, कम से कम कुछ देर के लिए तो चिंता-फिक्र से रिहाई दे देती है। अगरसोते-सोते ही दीवाली भी बीत जाती, तो कैसा अच्छा होता! उन्हें सबसे ज्यादा डर तो इस बात का था कि त्यौहार की इन छुट्टियों में कहीं उनकी भतीजी और उसका पति न आ जायँ? उफ! सब मिल कर उन्हें पागल कर देंगे।

ऑफिस जाना पड़ता है, इसीलिए जाते हैं। सब सहकर्मियों की तरफ गौर से देखते हैं। लेकिन किसी के चेहरे पर प्रसन्नता का कोई चिन्ह नहीं है। यह दीवाली नहीं है मानो फांसी का हुक्म है। धीरे-धीरे दिन बीतते जाते हैं। अब दिवाली के दो-चार ही दिन बाकी हैं।

हजामत बनाते-बनाते नाई बोला, 'बाबू हमें बख्शीश नहीं मिलेगी?'

'बख्शीश क्या हम लोगों को मिली है, जो तुम्हें दूंगा?'

'आपको कितना महीना मिलता है ?'

'बहुत मिलता है, क्यों ?' मन ही मन रामेश्वर बाबू जरा हँसे। प्रश्न किया—'अच्छा तुम तो उस सैलून में भी काम करते हो न ?'

'हां बाबू, वहां भी काम करता हूँ।'

'कितना मिलता है ?'

'वहां सिर्फ शाम के वक्त काम करता हूँ। जितना काम करता हूँ उसका आधा मिलता है। हां, महीने भर में साठ-सत्तर हो जाते हैं।'

'और इधर ?'

'इधर उससे कुछ ज्यादा ही कमा लेता हूँ, क्योंकि आधा देना जो नहीं पड़ता।'

इस बार उन्होंने जोर से लम्बी सांस ली। इतने परिश्रम और पैसा खर्च कर शिक्षित हो जाने पर जो कुछ मिलता है, उतना तो अपढ़ आदमी भी कमा लेता है। पढ़ने-लिखने से स्वतन्त्रता और चली गयी।

इसके दो दिन बाद।

उसके दरवाजे के सामने एक तांगा आकर रुका। बच्चे बाहर ही खेल रहे थे। एक साथ चिल्ला उठे—'मां, जीजी आ गयी, जीजी आ गयी।'

रामेश्वर बाबू के दिल की धड़कन तेज हो गयी। लेकिन तो भी कमरे से निकल कर बाहर आना पड़ा।

चाचा के हाथों में कान्ता को सौंप कर उसका ससुर उसी तांगे में वापस चला गया। जाते वक्त वह कह गया—'देखो साहब, आपकी लड़की भी एक ही है। जो कहो, ठीक उसका उल्टा करती है। खाने के लिए जिस चीज को मना करो, वही खाती है। परहेज तो बिल्कुल नहीं करती—'

बहुत बुरा लगते हुए भी रामेश्वर बाबू ने सिर्फ इतना ही कहा—'अभी बच्ची है। मैंने ही इसे पाल-पोसकर बड़ा किया है, समझा दूँगा।'

'बहुत अच्छा, नमस्ते ।' तागा चल दिया ।

रामेश्वर बाबू की इच्छा हुई कि चिल्लाकर कहें—चमार कहीं का । सिर्फ पैसा ही पहचानता है । काम कराते-कराते लड़की की जान निकाल लेगा, लेकिन तो भी एक नौकर नहीं रखा जाता । एक तो भर पेट खाना नहीं देता और ऊपर से दुनिया भर में गाता फिरता है कि ऐसी-वैसी चीजें खाकर अपनी तबियत खराब करती है ।

उसी वक्त डाक्टर बुलाना पड़ा ।

उनका सिर घूम रहा है । दिवाली का त्यौहार—चूल्हे में जाय ऐसी दिवाली । अब लड़की का इलाज कैसे कराया जाय ? डाक्टर की फीस, पथ्य के लिए पैसे—रुपया चाहिये, रुपया । कहाँ और कैसे मिलेगा ?

वह व्यक्ति कई दिन से चक्कर काट रहा है ।

कल भी रामेश्वर बाबू ने उसे डांट-डपट कर भगा दिया था । आते ही वह एक रट लगाता है, 'बिल पास कर दीजिये ।' उसके बिल में बहुत गोल-माल है, इसीलिये उन्होंने अभी तक पास नहीं किया । इरादा है कि दीवाली की छुट्टियों के बाद अच्छी तरह जांच करने के बाद पास करेंगे ।

आज फिर वह व्यक्ति आ पहुंचा है । लेकिन आज उसे देखकर वे चिढ़े नहीं ।

'बाबू ।'

कोई उत्तर नहीं ।

'जलपान का वक्त है । चलिये बाबू, हम लोग भी चाय पी आयें ।'

वह जैसे कुछ कमजोर हो गये हैं । मन में अब वैसी शक्ति नहीं है । कान्ता, कान्ता का क्या होगा ? मशीन के पुतले की तरह उठ खड़े हुए । वह व्यक्ति भी उनके साथ-साथ आगे बढ़ा ।

चाय पीने में मनुष्य को कितनी देर लगती है ?

दस मिनट बाद पान चबाते हुए अपनी मेज के पास आकर खड़े हो गये। उनके दोनों पैर काँप रहे थे। क्या दफ्तर के अन्य सब कर्मचारी उनकी ओर ही देख रहे है ? किसी प्रकार चारों ओर नजर घुमाकर उन्होंने एक बार सबकी ओर देखा। फिर कुर्सी पर बैठते हुए उनका हाथ अपनी जेब से टकरा गया। जेब फूली हुई थी। कान्ता की दवा-दारू, दीवाली का त्यौहार, बच्चों के कपड़े-लत्ते—सारे काम एक साथ ही आ पड़े है। खर्च कितना है !

उन्होंने उस व्यक्ति से कहा—'अच्छा जाओ, आज तुम्हारा बिल जरूर पास हो जायगा।'

स्वप्न और यथार्थ

बहुत देर बाद राम ने सामने रखा हुआ घी का टीन देखा। उसे दुख हुआ उसने यह क्या किया।

हरकुमार ने बीच मे आकर आफत में डाल दिया। मां ने दस रुपये दिये थे। इन रुपयों को लेकर वह मनोहर की दुकान पर जा रहा था, बहुत दिनों का पुराना हिसाब साफ करने के लिए। मनोहर ने स्पष्ट कह दिया था, बिना पहला हिसाब साफ किये और माल नहीं मिलेगा। उसके पहले के बाकी रुपये चुका देगा और उसके साथ ही साथ एक कनस्तर घी भी ले आएगा। इसी लिए राम जा रहा था। लेकिन इस बीच हरकुमार न जाने कहाँ से टपक पड़ा और पूरे दस रुपये मांग बैठा। उसे उधार चाहियें।

हरकुमार जमुना का पिता है। आकर विचित्र ढंग से हँसते हुए बोला—'जमुना मेरी बेटी जमुना, उसके लिए एक धोती लानी है। बाप होकर यह कैसे देख सकता हूँ कि सैकड़ों जगह से फटी हुई धोती पहिने हुए वह घूमे। अगले महीने रुपये मिलते ही सबसे पहले तुम्हारे रुपये चुका दूँगा।'

राम की कमजोरी कहाँ है, हरकुमार यह बहुत अच्छी तरह जानता है। अभाव और दरिद्रता की गृहस्थी में अनेक प्रकार की कितनी जरूरतें आजाती हैं, और वह भी किसी क्षण। अतः आज ऐसी जरूरत के वक्त हरकुमार स्वयं को कैसे संयत रख सकता है!

हरकुमार कनखियों से राम को देख रहा है। राम की अधखुली आँखों में मानो एकाएक बिजली दौड़ जाती है। अब हरकुमार को जरा भी सन्देह नहीं रहता।

हरकुमार को राम निराश न लौटा सका। कच्चे मन में प्रेम का

नया रंग है। इसलिए दस रुपये देकर ही उसे आनन्द मिला। लेकिन ....अचानक न जाने क्यों उसके मन में एक खटका हुआ। उसे दुख होता है ! उसने गलती की ?

करीब एक दो फलाँग की दूरी पर जंगल के सिरे पर एक टूटा-फूटा मकान है। वही हरकुमार का घर है !

मकान के सामने एक पत्थर पर बैठा हुआ हरकुमार हुक्का गुड़-गुड़ा रहा है। ऐसे समय अप्रत्याशित रूप से वहाँ राम आ पहुँचा।

हरकुमार कुछ चकित हो गया।

'ओ हो, राम ?' मानो यह कहते हुए हरकुमार चिल्ला उठा !

धीरे-धीरे मंथर गति से राम पत्थर पर आकर बैठ गया। धूप से उसका तपा हुआ चेहरा देख कर दया ही आती है। कुछ खोया हुआ सा भाव किसी चीज का साफ इशारा देता है। राम कुछ कहना चाहता है, लेकिन कहने के लिए भाषा नहीं मिल रही है। आखिर बहुत कष्ट के बाद एक क्षण के लिए उसके चेहरे पर दृढ़ता आती है। लेकिन दूसरे क्षण ही वह दृढ़ता गायब हो जाती है, कहता है, 'घूमता हुआ इधर आ गया'—और फिर एकाएक चुप हो जाता है।

राम यूँ ही घूमता हुआ नही आया है, हरकुमार से यह बात छिपी हुई नहीं है।

उस वक्त काफी तेज धूप है। प्रायः दो बजे हैं। इतनी देर से वह सारे गांव में इससे उससे दस रुपये उधार मागता फिरा है, हरकुमार यह जानता है। फिर, सब जगह से निराश होकर, वह हरकुमार के पास आया है। इस बात को जमुना का बाप पहली नजर में ही ताड़ लेता है। राम के मन का चित्र वह स्पष्ट देख रहा है।

हरकुमार को बुरा लगता है। आज इस वक्त उसे राम का आना बिल्कुल अच्छा नहीं लगा वह अपने भावों को संभालने की पूरी कोशिश करता है। लेकिन इधर राम मौन है। विक्षोभ के बाद धीरे-धीरे मानों एक शांत प्रतिक्रिया उसमें आ गयी है।

अन्य कोई दिन होता तो राम इस तरह निर्लिप्त भाव से चुप नहीं बैठा रहता। इस बीच न जाने कितनी बार चोरी-चोरी उसकी आँखें मकान में किसी को खोज चुकी होतीं। एक क्षण की दृष्टि के लिए, सिर्फ एक बार आँखें चार होने के लिए कितना छल और कौशल करना पड़ता है। पर आज राम को किसी का कोई होश नहीं। यहाँ तक कि मकान के अन्दर छायी हुई शांति भी उसमें कौतूहल पैदा नहीं करती।

लेकिन हरकुमार संशयहीन नहीं हो पा रहा है। हुक्के की कई बार जोर से खींच कर एक बार तीक्ष्ण दृष्टि से राम को देखता है। फिर, आवाज को कुछ मुलायम बनाकर अनायास ही कहता है—"राम, तुमने जो उपकार किया है, वह कभी नहीं भूल सकता। (आवाज जरा काँप जाती है, लेकिन ठीक कहने में ज्यादा देर नहीं लगती)। धोती देख कर जमुना कितनी खुश हुई। मेरी बेटी की खुशी का क्या पूछना! उस वक्त का उसका खिला हुआ चेहरा। बिना देखे तुम उसकी खुशी का अन्दाजा नहीं लगा सकते—राम।" यह कहकर हरकुमार ने बनावटी गम्भीरता का भाव बना लिया और फिर हुक्का गुड़गुड़ाने लगा।

राम चुप बैठा रहा।

मनुष्य के कोमल भावों से खिलवाड़ करने का यह निर्मम कौशल हरकुमार ने कहाँ से सीखा?

हरकुमार की चापलूसी व्यर्थ नहीं जाती। आकाश में एक सुनहरी लहर दौड़ जाती है, मानो नींद से जाग कर राम एक बार हरकुमार की ओर देखता है। इसके बाद फिर चुप होकर न जाने क्या सोचने लगता है। उसने पहले यह सोचा भी नहीं था। उसके रुपयों से खरीदी हुई धोती पहनकर जमुना कितनी खुश हुई होगी! वह कैसी सुन्दर लग रही होगी!

"मैंने तुम्हारी ही बात कही है, राम।"—हरकुमार कहता ही गया, 'हाँ, मैंने साफ कह दिया, राम अगर रुपया न देता तो मैं यह

धोती नहीं ला सकता था। क्या बताऊँ राम यह सुनकर भी वह कितनी खुश हुई।"

कृतज्ञता का भाव जाहिर करते हुए राम के चेहरे पर एक वेदना का भाव आ गया।

मुँह से निकाले हुए धुएं की छाया में हरकुमार राम को बहुत गौर से देख रहा है। देखता है, उत्सुक आँखें बहुत व्यग्र भाव से मकान के भीतर किसी को खोज रही है।

"नयी धोती पहिन कर क्या फिर घर मे बैठा जाता है ? सब सखी सहेलियों को दिखाने चली गयी है।" कहकर हरकुमार जोर से धुआ छोड़ने लगता है।

राम के चेहरे पर मुस्कुराहट खेल जाती है। "तुम्हारे ये रुपये मैं ज्यादा दिन बाकी नहीं रखूंगा।'--हरकुमार फिर कहता है,--"हाथ में आते ही फौरन दे दूँगा।"

खोया हुआ राम अब सचेत हो जाता है—"इसकी आप कतई फिक्र न करें, और ऐसे कौन से ज्यादा रुपये हैं। अगर लौटा सकें तो तो ठीक है और यदि जल्दी न दे सकें तो जाने दीजिये।" निर्भय और स्पष्ट स्वर में राम भरोसा देता है।

लेकिन दूसरे ही क्षण राम सुस्त हो जाता है। उसने भावावेश में जो कुछ कहा उसका असली अर्थ स्वयं उसके सामने साफ हो गया।

"अब मैं चलूँ।" कुछ विचलित होकर राम ने कहा।

"अच्छा।" हुक्के को अलग रखते हुए हरकुमार ने खाँसकर अपना गला साफ कर लिया।

"माँ मेरी राह देख रही होगी।" राम ने कहा।

उसकी आवाज भारी हो गई। एक आवेग उसके दिल में आया और फिर धीरे-धीरे दूर हो गया।

अन्यमनस्क राम अपने घर की बात सोच रहा है मां के बारे में। हमेशा काम में लगी रहने वाली मां का चेहरा मुर्झाया हुआ उसे याद

आता है। वास्तव में, मां कितने कष्ट झेलती है, कितना काम करती है। उसे यह सब देखकर बहुत दुख होता है। आज अगर मां न होती तो गृहस्थी का खर्च कैसे चलता। आज भी जो घर की इज्जत बनी हुई है वह सब केवल मां की वजह से ही है! उसी मां के खून-पसीने से कमाये हुए दस रुपयों को उसने इस तरह नष्ट कर दिया। इस काम के लिए उसका मन उसे बार-बार धिक्कार रहा है।

शेष मध्यान्ह की हवा चल रही है। राम धीरे-धीरे आगे बढ़ा जा रहा है। हरकुमार का मकान ज्यादा दूर नहीं है। अब उसका मकान नजर आने लगता है।

पुराना जंगल है! दूर-दूर से लोग यहाँ लकड़ी काटने आते हैं।

दोपहर भर लकड़ियां इकट्ठी कर जमुना अपने घर की ओर चली। रास्ते में राम को आता हुआ देखकर उसने अपने सिर से लकड़ियों का बोझ उतार दिया। बोली—"हमारे यहाँ गए थे, न? और अब ज्यादा वहाँ न जाना," मानो चंचल आँखें कह रही हैं कि 'बाबू जी को पूरा सन्देह हो गया है।'

राम चुपचाप खड़ा है। उसके चेहरे पर थकान और उदासी के चिन्ह हैं। जमुना की नयी धोती उसे नजर नही आती। नयी धोती कहाँ है, एक फटी-पुरानी धोती वह पहने हुए है, जगह-जगह पर बन्द लगे हुए हैं और वह भी घुटनों से जरा ही नीचे है। राम उसे एकटक देख रहा है।

जमुना चौंकती है। प्यार से कहती है—"असभ्य" और यह कहने के साथ-साथ धोती को खींचकर वह अपने पैर ढकना चाहती है।

झूठ, झूठ, सफेद झूठ। हरकुमार ने उसे धोखा दिया। राम का सिर घूमने लगता है।

"जानते हो?" जमुना कहती है, "पिता जी ने कल तुम्हें देख लिया था। देख लेने दो। तुमसे मिलने के लिए मैंने एक नयी जगह खोज निकाली है। पहले से भी अच्छी जगह है और किसी को जल्दी

पता भी नहीं चलेगा। यह देखो, उधर बांयीं ओर, एकदम एकान्त है।"—कहकर वह बहुत दूर लगे हुए एक पेड़ की ओर इशारा करती है।

पक्षी का प्राणहीन स्वर। हवा के झोंके के साथ फूलों की गंध। राम को होश आता है। इस पेड़ के नीचे शाम के वक्त वे दोनों न जाने कितनी बार मिले हैं और प्रेमालाप किया है। सारी बातें बिजली की तरह उसके दिमाग में दौड़ गई।

"शायद पिता जी के पास ही गये थे?" कुछ गम्भीरता से जमुना ने प्रश्न किया।

राम कहेगा। हाँ, यह सब बातें जरूर बतायेगा। जमुना से कुछ भी नहीं छिपा पायेगा। कुछ हिचकिचाते हुए बोला—"तुम्हारे पिता जी आज सुबह मुझसे दस रुपये उधार मांग कर ले गये, यह कह कर कि आज ही तुम्हारे लिए एक नयी धोती खरीदनी है।"

'ऐ",—जमुना आर्तनाद कर उठी, 'क्या कहते हो? तुमने बाबू जी को रुपये दे दिये? बस, गधे, तुम बिल्कुल गधे हो। तुमने उन्हें रुपये क्यों दिये? पिता जी की आदतों को तुम नहीं जानते? तुम्हारे रुपयों से वे धोती लायेंगे और वह भी मेरे लिये, यह सम्पूर्णतः असंभव है। तुम्हें धोखा दिया है, उल्लू बनाया है। सब रुपया गांजा और दारू पीने मे खर्च करेंगे।"

कुछ देर खड़ी रहकर जमुना न जाने क्या सोचती रही और फिर एकाएक अपने घर की ओर दौड़ी। लेकिन कुछ दूर जाकर ही ठहर गया। वापस आयी। बिना कुछ कहे-सुने उसने लकड़ियो का बंडल उठाया और चल दी। लेकिन इस बार उसकी चाल में तेजी नहीं थी।

राम भी उसके पीछे-पीछे कुछ दूर तक आगे बढ़ा। लेकिन हर-कुमार के मकान से कुछ इधर ही रुक गया। वहाँ खड़े-खड़े हरकुमार के घर की कलह का शोर-गुल राम सुनाता रहा। अभी कुछ क्षण पहले ही वहाँ शान्ति थी, अब वहाँ क्या मार-काट हो रही है जो इतना

हल्ला मच रहा है।

राम जरा और आगे बढ़ा।

जमुना की आवाज सुनाई पड़ी—"वह रुपया मेरा है।"

हरकुमार जवाब देता है—"हूँ, रुपया तेरा है—तेरा कहाँ से आया, रुपया उसका है।"

लड़की कहती है—"मेरा नाम लेकर ही तो लाये हो।"

बाप चिढ़ कर चिल्लाता है—"मै कुछ भी करूँ, लेकिन तू मुझसे पूछने वाली कौन होती है?"

राम निर्लिप्त भाव से खड़ा रहा। हवा के एक झोंके के साथ कुछ रूखे बाल आकर उस पर गिरे। उसे हँसी आती है, लेकिन इस हँसी के साथ कहीं दो बूंद आँसू भी जमा है।

हरकुमार के मकान की कलह और कुहराम अब बन्द हो गया है। ऐसा मालूम होता है कि आपस में कुछ समझौता हो गया है और कुछ देर बाद शायद इस कलह का कोई चिन्ह भी नहीं रह जायगा। बाप तम्बाकू मांगेगा और बेटी हुक्का तैयार करके सामने ला देगी। हरकुमार निश्चिन्त होकर हुक्का गुड़गुड़ायेगा—खांसेगा, थूकेगा और हँसेगा।

और जमुना? आज उसके गर्व का भी क्या ठिकाना। छाती फुला कर शायद सारे घर में घूमेगी।

थका-मांदा राम एक विचित्र वैराग्य के भाव से थोड़ी देर खड़ा रहा।

—समाप्त—